विषय सूची

नं०	लेख	लेखक	पृष्ठ
१.	वेदोपदेश		१
२.	भगवद्भक्ति (ले० श्री पूज्य स्वामी भोले बाबा जी		२
३.	भगवान कृष्ण का संदेश [ले० मि० बी० एल० बी० ए० एल० एल० बी० सराफ] ...		६
४.	दूसरों का भला करने की अपेक्षा स्वयं भला होना कहीं अच्छी बात है [ले० श्रीस्वामी आत्मानन्दजी		१०
५.	आदर्श-मित्र [ले० श्री रंगाविरुद पाण्डेय विद्याभूषण 'विष्णु']		११
६.	ज्ञान और भक्ति का तात्पर्य [ले० श्री रत्न मथुराप्रसाद जी रिटायर्ड जज]		१७
७.	मनो नास के साधन (ले० महात्मा राम)		२१
८.	अवधूत गीता ज्ञान (ले० प्रभुदत्त ब्रह्मचारी)		२५
९.	योग-साधन (ले० श्रीस्वामीशिवानन्दजी सरस्वती)		२७
१०.	पाठकों से निवेदन (सम्पादक)		३०
११.	भजन		३१

REG DNo. L 2077

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

१.	भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता	मूल्य	॥=)
२.	भगवद्गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	,,	।=)
३.	वेदोपनिषद्		।)
४.	अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	,,	।)
५.	ज्ञानधर्मोपदेश	,,	।।।)
६	भक्ति ज्ञान योग संग्रह	,,	=।।)
७.	सत्य शब्द संग्रह (गुटका)	,,	।)
८.	सत्य शब्द संग्रह	,,	।=)
९.	शब्दसंग्रह	,,	।)
१०.	सारसंग्रह	,,	।)
११.	भाषा फक्किका प्रकाश	,,	=)
१२.	मनुस्मृति सार	,,	=।)
१३.	भक्ति चिन्तामणि	,,	=)
१४.	भगवद्भक्तांक	,,	॥=)
१५.	भगवदंक	,,	॥।)
१६.	गवांक	,,	१।)
१७.	महात्मांक	,,	१)

नोटः-एक रुपये से कम मूल्य की पुस्तक मंगाने वालों को डाक महसूल सहित टिकट भेजने चाहियें।

मिलने का पताः-

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

मुद्रक तथा प्रकाशक नमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

गोपीकुमार

गीताप्रेस, गोरखपुर।

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ७ | श्री भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, आश्विन पूर्णिमा सं० १९८९ | अंक १ पूर्ण संख्या ७३

वेदोपदेश

येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धन मिच्छमानः।
तस्मिन्म इन्द्रो रुचिमा दधातु प्रजापतिः सविता सोमो अग्निः॥ १॥

हे व्यवहार चतुर लोको! धन से धन की प्राप्ति की इच्छा करने वाला मैं जिस धन से व्यापार करता हूं उस व्यापार में परम ऐश्वर्यवान् प्रजा पालक सकल जगदुत्पादक विद्वान तेजस्वी ईश्वर मेरी रुची धारण करे रक्खे॥ १॥

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रा वरुणा प्रातरश्विना।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रं हवामहे॥ २॥

सवेरे तेजस्वी ईश्वर की तथा प्रातःकाल में परमेश्वर्यवान ईश्वर की प्रार्थना करते हैं। सवेरे मित्र और स्वीकार करने योग्य ईश्वर की तथा प्रातःकाल में पोषक और हिंसक शक्ति शाली ईश्वर की प्रार्थना करते हैं। सवेरे भाग्यवान, तुष्टि देने वाले ज्ञान के स्वामी ईश्वर की प्रार्थना करते हैं और प्रातः काल में शान्त्यादि गुण युक्त और भीषण गुण युक्त ईश्वर की प्रार्थना करते हैं॥ २॥

अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सद मिच्छन्तु भद्राः ।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥

घोड़ों से युक्त गौवों से युक्त शूरवीर पुरुषों से युक्त कल्याण कारक उषःकाल हमारे घरों को सुशोभित करें। घी का दोहन करने वाले और सब ओर से पुष्ट हुए २ आप श्रेष्ठ हम सब का स्वास्थ की रक्षा करके सुरक्षित करें ॥ ३ ॥

सीरा युँजन्ति कवयो युगा वितन्वते पृथक् धीरा देवेषु सुम्नयौ ॥ ४ ॥

ज्ञानी लोग हल जोतते हैं। और विद्वानों के लिए भक्ति धारण करने वाले धैर्यशाली पुरुष अलग २ हलका जुआ फैलाते है ॥ ४ ॥

नीचैः पद्यन्ता मधरे भवन्तु येनः सूरिं मघवानं ।
पृतन्यान् क्षिणामि ब्रह्मणा मित्रानुन्नयामि स्वानहम् ॥ ५ ॥

जो शत्रु हमारे विद्वान् को और धनवान् को अथवा शूरों को सैन्य द्वारा नष्ट करना चाहते हैं वे नीचे गिर पड़ें और वे नीचे हो जांय। ज्ञान, ईश्वर शक्ति आदि से शत्रुओं का नाश करता हूं और मैं अपने लोकों को उन्नति के प्रति ले जाता हूं ॥ ५ ॥

भगवद्भक्ति

[ले० श्री पूज्य स्वामी भोले बाबा जी]

बालरूपं जगन्नाथं यशोदानन्द वर्धनम् ।
पूतनोरसिकीडन्तं कृष्णं वन्देऽकुतोभयम् ॥

वात्सल्यनिष्ठा।

मंसाराम-महाराज ! कल आप ने दास्य-निष्ठा सुनाई थी और उस निष्ठा के भक्तों की कथायें भी सुनाई थीं, आज कृपया वात्सल्यनिष्ठा की महिमा और उस निष्ठा के भक्तों की कथायें सुनाइये।

मस्तराम-भाई ! वात्सल्यनिष्ठा की ऐसी महिमा है कि बलात्कार से भगवत् को आकर्षण करके भक्त के अन्तःकरण में स्थिर कर देती है और यह कदापि सम्भव नहीं है कि इस निष्ठा के अवलम्बन से भगवत् की भक्ति करने वाले को भगवत्

की प्राप्ति न हो, क्योंकि भगवत् की प्राप्ति मन के प्रेम पर निर्भर है और इस निष्ठा से बिना श्रम शीघ्र ही प्रेम उत्पन्न होता है। जैसी इस निष्ठा से शीघ्र प्रीति उत्पन्न होती है, वैसी शीघ्र अन्य निष्ठा से नहीं होती। यह बात लोक में प्रसिद्ध है कि पिता की अपने पुत्र में सच्ची केवल प्रीति होती है और पुत्र कैसा ही कुरूप और बुद्धिहीन हो, तो भी पिता के कलेजे का टुकड़ा और आंखों का उजाला होता है। यदि ऐसा ही प्रेम भगवत् में लगाया जायगा, तो भगवत् की प्राप्ति शीघ्रतर क्यों न होगी? अवश्य हो होगी। सिवाय इस के बालकों के चरित्र ऐसे मनोहर होते हैं कि बरबस चित्र में बस जाते हैं बहुतों ने देखा होगा कि किसी का सुन्दर बालक लीला कर रहा हो और तोतली बोली बोल रहा हो, तो चलते हुए भी उस की लीला देख कर प्रसन्न होते हैं, ठहर जाते हैं और वह बालक उनके मनमें समा जाता है। जब प्राकृत बालकों का यह वृतान्त है, तो यदि पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्दघन का, जिस पर सब सुन्दरताई, लीला और बालकों के अन्य चरित्र समाप्त हैं, इस निष्ठा के सहारे से आराधन किया जाय, तो शीघ्र ही मन में क्यों नहीं समा जायगा? सिवाय इसके अन्य सब वस्तुओं में किसी न किसी कामना से प्रीति होती है और जब कामना नहीं रहती, तो प्रीति भी नहीं रहती, पुत्र की प्रीति आप से आप मन के तरंग से होती है, इस लिये दृढ होती है। इस से सिद्ध हुआ कि यदि इस निष्ठा से भगवत् में मन लगाया जायगा, तो प्रीति कभी घटेगी नहीं। किंतु दिन प्रति दिन प्रीति बढ़कर भक्त को भगवत्परायण कर देगी।

जहां रस भेद का विवरण किया है, वहां नव रस के निश्चय करने वालों ने वात्सल्यनिष्ठा को करुणा रस का एक अंग लिखा है और भगवद्भक्तों ने रसों का निश्चय करके करुणारस का एक अंग प्रसिद्ध कर दिया है, जब दोनों के कथन पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया जाता है, तो भगवद्भक्तों का कथन ठीक और युक्त जचता है, क्योंकि रस उस को कहते हैं कि जिस वस्तु का रस विख्यात किया है, उस वस्तु का सा रस अन्य वस्तु में न हो, जैसे वीर रस वह कहा जायगा, कि जिस पर वीरता और शूरता की सब पदवी समाप्त हो जाय, इसी प्रकार यहां दया के विचार में मुख्य रस उस को कहना चाहिये कि जिस पर दया समाप्त हो और यह दया वात्सल्यनिष्ठा पर समाप्त होती है क्योंकि करुणा उस को कहते हैं कि दूसरों का दुःख देख कर मन कोमल हो जाय और मन, वचन और कर्म से उसके दुःख के दूर करने में उपाय किया जाय और वात्सल्य वह है कि प्रीति की अति झोंक से धैर्य छोड़ कर दया हो और मन, वचन और कर्म एक बार ही अन्तःकरण की झोंक और खींच से सब एकाग्र और एक वृत्ति होजांय। अब विचारना चाहिये कि दया की वात्सल्य रस पर समाप्ति है या करुणा रस पर और दोनों में वात्सल्य रस की अधिक प्रतिष्ठा है या करुणा रस की। यह बात नीचे के दृष्टान्त से भली प्रकार समझ में आ जायगी।

एक संकीर्ण गली में एक तरफ से गायें आ रही थीं और दूसरी तरफ से एक ब्राह्मण गंगा-स्नान करके आरहा था। इतने ही में ब्राह्मण ने क्या देखा कि किसी का दो तीन वर्ष का एक लड़का खेल रहा है और गायें उस के पास आने वाली हैं। ब्राह्मण, मैं अशुद्ध न हो जाऊं, मुझे कोई छू न ले, ऐसा विचार कर बड़ी दया से अरे! कोई आकर इस बच्चे को उठा लो, नहीं तो बालक को गायें

कूंद डालेंगी, ऐसे पुकारता रहा और अशुद्ध हो जाने के भय से आप उसने बालक को नहीं उठाया। ब्राह्मण का शब्द सुन कर एक मनुष्य आया और बालक को उठा ले गया। दूसरे दिन ऐसा हुआ कि उसी अवस्था का उसी का बालक अशुद्ध कीचड़ मिट्टी में सना खेल रहा था और गायें दूसरी तरफ से आरही थीं, आज उसने अशुद्धता का कुछ विचार नहीं किया, तुरन्त ही दौड़ कर लड़के को उठा कर अपने गले से लगा लिया। इस दृष्टान्त से वात्सल्य और करुणा रस का विचार करने से यह ही सिद्ध होता है कि वात्सल्य रस मुख्य है और करुणा रस उस का अंग है।

श्रीदशरथनन्दन अवधविहारी और श्रीनन्द-नन्दन वृन्दावनचन्द्र की यह उपासना प्रचलित है और उस उपासना वालों का ऐसा अलौकिक भाव है कि उसका वर्णन नहीं हो सकता, वे भगवत् को अपना पुत्र मानते हैं और उन्हीं को पूर्णब्रह्म सच्चि-दानन्दघन मुकुन्द जानते हैं। इस उपासना की कुछ रीति विष्णु स्वामी और वल्लभाचार्य की कथा में वर्णन कर चुका हूं और कोई २ सामग्री आगे बताऊंगा। निगम अगम, ब्रह्मा और शिव भी इस उपासना और उसके उपासकों की महिमा वर्णन नहीं कर सकते, तो अन्य कोई क्या कर सकता है। सच है कि जो पूर्णब्रह्म अनेक जन्मों तक योगियों के हजारों साधन करने पर भी मन में नहीं आता, वह ही उपासकों के लिये वर रूप हुआ परम अनूप बालचरित्र दिखाये, अब दिखाता है और आगे दिखावेगा, उसका कौन वर्णन कर सकता है? कोई नहीं कर सकता, उसी पूर्णब्रह्म को यह निष्ठा ऐसी प्यारी है कि अपने भक्तों के चित्त को दूसरी निष्ठाओं से फेर कर प्रीतियुक्त इस निष्ठा में लगा देता है। इस बात का भागवत् और रामायण से भली प्रकार निश्चय होता है। नन्दरानी, देवकी, कौसल्या और वसुदेव को भग-वत् ने कई वार अपनी महिमा दिखायी, परन्तु जब उनके चित्त की वृत्ति उसमें न लगी, तो आप भग-वत् ने उसमें से उनके मनको फेर कर बाल चरित्रों में लगा दिया और परमानन्द दिया। यदि भगवत् को यह निष्ठा प्यारी न होती, तो क्यों ऐसा करते अब भी इस भाव को पक्का करने के निमित्त अपने भक्तों को इस प्रकार के चरित्र दिखलाते रहते हैं। यह बात बिट्ठलनाथ, कृष्णदास, कर्माबाई आदि की कथा से प्रकट होती है।

थोड़े दिनों की बात है कि वल्लभकुल के एक गोसांई वात्सल्यरस के परमभक्त हो चुके हैं। एक वार उनके घर की स्त्रियों को चूड़ी पहिनाने के निमित्त एक मनिहारी उनके घर पर आयी। जब गोसाईं जी दाम देने लगे तो मनिहारी ने कहा कि मैं ने सात लड़की और बहू इत्यादि स्त्रियों को चूड़ियां पहिनाई हैं। गोसाईं जी ने कहा कि मेरे घर में बेटी और बहू समेत छः स्त्रियां हैं। इस वाद विवाद में मनिहारी बिना दाम लिये चली गयी। रात को राधिका महारानी ने स्वप्न में गोसाईं जी को कहला भेजा कि क्या मैं तुम्हारी बहू नहीं हूं, जो मेरी चुड़ियों के दाम मनिहारी को नहीं दिये। हे मंसाराम! विचारना चाहिये कि भगवान् कैसे मनोहर चरित्र करके अपने भक्तों के भाव को पक्का कर देते हैं। इसलिये यह वात्सल्य निष्ठा भगवत् के शीघ्र मिलने के हेतु सब निष्ठाओं का तत्व, अभिप्राय और परम सार है।

हे मंसाराम! विभाव, अनुभाव, सात्विक और व्यभिचारी इन चार सामग्रियों से रस प्रकट होते हैं, यह बात पूर्व में कह चुका हूं। इस वात्स-ल्यरस की सामग्रियों में पहली सामग्री पूर्ण ब्रह्म,

परमात्मा, अच्युत, अनन्त, सच्चिदानन्दघन श्रीनन्दनन्दन महाराज अथवा रघुनन्दन महाराज तीन वर्ष से सात वर्ष तक अवस्था वाले, सुकुमार अङ्ग, तोतले वचन, श्याम सुन्दर स्वरूप, शिर पर छोटा सा मुकुट, शरीर में महीन जरतारी का कुरता गोटे पट्टे से भरा हुआ, कानों में झूमके और छोटे २ कुण्डल, भाल पर गोरोचन का तिलक, नाक में बुलाक, कपोल पर डिठौना, आखें डीठ और चंचल गले में कठुला, यंत्र और बघनखा, हाथों में कड़े और पहुंची, चरण कमलों में घुंघरू यह विषयालम्बन है और नन्द, यशोदा अथवा कौशल्या महारानी इत्यादि आश्रयालम्बन हैं। अत्यन्त चंचलता और चपलता कि कभी माता की गोद में हैं, कभी खिलोनों की ओर चित्त है, कभी परछेरुओं पर दृष्टि है, कभी भोजन पर मन है, कभी किसी वस्तु के लेने में हठ है, कभी तोतली वाणी से कुछ पूछना, कभी पलंग को पकड़ कर खड़ा होना, कभी माता की अंगुली पकड़ कर चलना सीखना, कभी नाचना कभी सखाओं और भाइयों के साथ आंगन में खेलना इत्यादि अनेक चरित्र विभाव हैं यानी पहली सामग्री है। स्नान, शृंगार करना, बालचरित्र के खिलोने आदि तैयार करके रखना, सब प्रकार के भोजन के पदार्थ भोजन कराना, प्यार करना, लाड लड़ाना, गोद में लेकर सैर कराना, आशीर्वाद देना इत्यादि दूसरी सामग्री अनुभाव की है। तीसरी सामग्री आठ प्रकार की सात्विकभाव (१) स्तम्भ ज्यों का त्यों रहजाना, (२) प्रलय यानी मूर्च्छा, (३) रोमांच, (४) स्वेद यानी पसीना आजाना (५) विवर्ण यानी मुख का रंग बदल जाना, (६) कम्प यानी शरीर कांपना, (७) अश्रु यानी आंसु बहाना और (८) स्वरभंग यानी शब्द में भेद पड़जाना, ये सब इस रस में वर्तमान हैं। चौथी सामग्री व्यभिचारी में जो तैतीस दशा हैं, उनमें से दश इसमें प्राप्त होती हैं (१) मनस्ताप, (२) दुर्बलता, (३) विचरण, (४) संसार के कामों से मन उचट जाना, (५) अदृढता, (६) जड़ता, (७) दुःखी हो जाना, (८) उन्मत्तता, (९) मूर्च्छा और (१०) मृत्यु, इस रस का स्थायी भाव यह कि चित्त की वृत्ति दोनों लोकों की चिन्ता छोड़ कर एकाग्र होकर दिन रात भगवत् के स्वरूप और प्रेम में अचल और दृढ़ हो जाय, किसी में न जाय। एक भक्त भगवत् से इस प्रकार प्रार्थना करता है।

हे श्रीनन्दनन्दन! हे दीनवत्सल! प्रणतार्ति भञ्जन! हे पतितपावन! हे दीनबन्धु! हे कृपासिंधु! महाराज! आज तक इस मन को समझाता रहा, समझाते २ थक गया, कुछ फल न हुआ, क्योंकि इस मनने न कुछ माना न कुछ सुना! यदि आप की उस कृपा और प्रसन्नता का, जिसके प्रभाव से अजामिल गज, गणिका, पशु पक्षी बिना किसी साधन और भजन के एक क्षण में परम पद को प्राप्त होकर जन्म मरण से छूट गये, आश्रय करके आपके द्वार पर विनय और प्रार्थना करता, तो आपके विरद और दया से मैं क्यों ऐसा संसारी ही रहता और यह मन मेरे वश में क्यों न हो जाता! अब उसी कृपा और दया की आशा करके विनय करता हूं कि जिस प्रकार से हो सके, ऐसी कृपादृष्टि हो कि आपका यह रूप अनूप मेरी आंखों में अचल बसा रहे।

अवधेश के चार बालक मेरे मन मन्दिर में सदा विहार कर रहे हैं, कभी चन्द्र मांगते हैं, कभी प्रतिबिम्ब देख कर डरते हैं, कभी करतल बजा कर नाचते हैं, माता मन में मुदित करती है, कभी रिस करके वह ही वस्तु लेते हैं, जिसके लिये हठ करते हैं। तनु की द्युति श्याम है, कमल के जैसे नेत्र

हैं, धूल से भरे हुए हैं, फिर भी अनंग की धूल में मिला रहे हैं, जब तोतले बोल बोलते हैं, तब दांतों की पंक्ति बिजली सी चमक जाती है, घुंघराली लटें मुख पर और कपोलों पर लटकती हैं, जब किल किला कर बाल विनोद करते हैं, तो मातायें अपने प्राण न्योछावर करती हैं।

कथा कौशल्या जी की।

कौशल्या महारानी के भाग्य की बड़ाई और उनके भक्तिभाव का वर्णन कौन कर सका है कि पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्दघन जिनकी महिमा वेद और शास्त्र वर्णन करते हुए पार नहीं पाते, वे ही परब्रह्म जिनकी भक्ति के वश होकर परम मनोहर रूप धारण करके प्रकट हुए और ऐसे परम पवित्र चरित्र दिखलाये, जिनको सुन कर महापातकी भी भवसागर से पार होते हैं। महाराजाधिराज दशरथ जी की कथा में वर्णन हो चुका है कि पूर्व जन्म में दशरथ जी स्वायंभुवमनु थे और कौशल्या महारानी शतरूपा थी। उनको भगवान ने वर दिया था कि मैं तुम्हारा पुत्र होऊंगा। उस समय शतरूपा जी ने यह भी वरदान मांगा कि मुझे तुम्हारे स्वरूप का ज्ञान बना रहे। भगवत् ने आज्ञा की कि तुमको माता का भाव और ज्ञान दोनों बने रहेंगे। इसके अनुसार कौशल्या जी को दोनों भाव बने रहे, इसी लिये वात्सल्य उपासना की आद्याचार्या कौशल्या जी मानी जाती है।

एक समय कौशल्या महारानी भगवत् को पालने में सुलाकर आप कुलदेवता का पूजन करने को गयीं और पूजा के समय भगवत् अर्थात् रामचन्द्र को देख कर विस्मित हो वहां से भगवत् के शयनस्थान में आयीं, तो वहाँ भी भगवत् को सोते हुए देख कर फिर पूजागृह में गयीं, तो वहां भी भगवत् दिखायी दिये। इस प्रकार तीन चार बार के आने जाने में दोनों स्थानों पर भगवत् को देख विचार करने लगीं कि यह क्या कारण है। भगवत् ने माता को चिन्तातुर देख कर अपने स्वरूप और अपनी माया के दर्शन कराये कि अगणित ब्रह्मांड हैं, भिन्न २ प्रकार की सब ब्रह्मांडों की रचना है और सब में श्रीरघुनन्दन महाराज विराजमान हैं परन्तु भगवत् का रूप ब्रह्मांडों के समान अनेक प्रकार का नहीं है किंतु एक ही प्रकार का है। ब्रह्मा शिव, सिद्ध, देव, असुर आदि स्तुति कर रहे हैं और एक कोने में ब्रह्मांडों को रच कर फिर नाश करने वाली माया डर सहित खड़ी है। कौशल्या जी ने यह चरित्र देख कर भयभीत होकर भगवान् के चरण पकड़ लिये। भगवत् ने हँस कर अपने स्वरूप का माता को बोध कराया और कहा कि अब मेरी माया तुम को कभी नहीं सतावेगी। इस चरित्र से भगवत् शिक्षा देते हैं कि जिसको मेरे स्वरूप का लाभ हुआ है, उसको मेरे सिवाय कोई पूजने योग्य नहीं है क्योंकि जिस देवता में जो ईश्वरता है, वह मेरी ही दी हुई है और वह देवता मेरे ही सम्बन्ध से पूजने योग्य है।

हे मंसाराम! पश्चात कौशल्या जी भगवत् स्वरूप के चिन्तन और लाड लड़ाने में ऐसी तत्पर हुईं कि जिसका वर्णन नहीं हो सका। जब महाराज वन को चले गये तो कौसल्या जी को भगवत् का स्वरूप ऐसे संमुख रहता था कि कभी उनको वन जाना मालूम नहीं हुआ, जब कोई स्मरण करा देता था, तब वन का जाना मालूम होता था और क्षण भर पीछे वही दया हो जाती थी। जब महाराज लंका जीत कर आये और कौसल्या महारानी पूर्व के समान भगवत् की आरती करने लगीं, तो यह मालूम न हुआ कि यह समय कौन सा है किन्तु

यह सोच कर कि लड़के ने ऋषीश्वरों का सा रूप बना लिया है और मेरी बहू का रूप भी वैसा ही क्यों कर दिया है, दुःखित हुई और उसी घड़ी जानकी महारानी को अपने साथ ले जाकर आभूषण इत्यादि से शृंगार कराया। जब भगवत् के राज-सिंहासन पर बैठने की समाज और धूम धाम का आनन्द अयोध्यापुरी में हुआ, तो कौसल्या महारानी को यह चिन्ता हुई कि राजतिलक के समय ऋषीश्वर, देवता, असुर आदि सब आवेंगे और मेरा लड़का और बहू परम सुकुमार, कोमल और मनोहर हैं, ऐसा न हो कि रूप अनूप देख कर किसी की नज़र लग जाय। उस कारण से सुमित्रा आदि रानियां तो मंगल और आरती की तैयारी में रहीं और कौशल्या महारानी को आरती करने के समय तक ऐसे उपाय की खोज रही कि जिससे नज़र न लगे। आरती करने से पहले नज़र बचाने के लिये स्याही की एक बिन्दी अपने लड़के और बहू के चेहरे पर लगा कर आरती की और रूप देख कर परमानन्द में मग्न हो गयीं। इस समय के परमानन्द की सामग्री भक्तों के हृदय में बनी हुई है।

कुं–कौसल्या रानी भई, आदि भक्त वात्सल्य।
बाल रूप भज राम कुं, पाया पद कैवल्य॥
पाया पद कैवल्य, पुत्र में चित्त लगा के।
पूर्णब्रह्म पहिचान, प्यार कर लाड लड़ा के॥
भोला! भज श्रीराम, जिसे भजते मुनीज्ञानी।
जिसे ज्ञान के पुत्र, भजा कौसल्या रानी॥

कथा श्रीनन्दबाबा और यशोदा रानी की।

धरानन्द, ध्रुवानन्द, उपनन्द, अभयनन्द, सुनन्द, अभयानन्द, कर्मानन्द, धर्मानन्द और वल्लभानन्द ये नव नन्द हैं। इन में से धरानन्द जी के घर भगवत् का अवतार हुआ था। धरानन्द और यशोदा रानी की यह कथा है। इन दोनों के भाव की महिमा कोई वर्णन नहीं कर सका। इनके और कौशल्या महारानी के भाव में किंचित भी भेद नहीं है। यदि कोई भेद कहे, तो उसका कारण उपासना का भेद न समझना चाहिये किन्तु लीला और चरित्रों का भेद समझना चाहिये क्योंकि श्रीरामावतार में ऐसे चरित्र बहुत नहीं हुए कि जिनको कौसल्या जी से छुपाने का प्रयोजन पड़े और श्रीकृष्णावतार में तो आरम्भ से ही सब चरित्र ऐसे हुए कि माता से अवश्य छुपाने पड़ें। इन चरित्रों का कारण प्रसिद्ध है कि भगवत् का अवतार केवल जगदोद्धार के हेतु होता है। श्रीकृष्ण ने ऐसे २ मनोहर चरित्र किये कि सब का मन भगवत् में लग जाय। इन चरित्रों का वृत्तान्त यशोदा माता और नन्दबाबा को मालूम नहीं हुआ और जब कभी संदेह हुआ, तो ऐसा समझा कि हमारा बालक भोलाभाला और सीधासादा है, उसने ऐसा काम कभी नहीं किया होगा। जब भगवान् गोपियों का मक्खन चुराते और वे मनमोहन का रूप अनूप देखने के लिये उरहाने के बहाने यशोदा के पास आतीं और उरहाना देतीं, तो यशोदा अपने कौतुकी पुत्र का अपराध न समझतीं, बालक से कुछ न कहतीं, उलटा उन्हीं को लजाती थीं।

यद्यपि घर में हज़ारों दास दासी थे परन्तु जो गायें निज भगवत् के नाम से कर रक्खी थीं, उनकी सेवा करना और उनके दूध को गरम करना, जमाना और बिलोना यशोदा जी अपने हाथ से किया करती थीं और जो मक्खन होता था, उसको अलग अलग कई पात्रों में ऐसे स्थान पर रखतीं थीं कि जहां आते जाते भगवत् की दृष्टि पड़े। अभि-

प्राय यह था कि किसी प्रकार यह लड़का मुफ्त से मांग कर अथवा छुपा कर कुछ मक्खन खाय, जिस से शरीर पुष्ट हो। ब्राह्मण, साधु कुछ जानने वाला जो कहीं सुनतीं, तो उसको बड़े निहोर और चाह से बुलातीं और उसको मन माना धन द्रव्य देकर इस बात का यंत्र या गंडा बनवाया करतीं कि लड़का सुकुमार है, भले बुरे स्थान पर समय बे समय फिरता रहता है, किसी की नजर न लग जाय और अच्छे प्रकार भोजन किया करे।

हे मंसाराम! ऐसे २ चरित्र असंख्य हैं। यदि शेष और शारदा के कोटान कोटि जन्म कोई पावे तो भी वर्णन नहीं कर सकता, क्योंकि यदि महापापी और पतित मनुष्य भी यशोदा माता के उस भाव और चरित्र का स्मरण कर लेता है, तो उसकी भी महिमा किसी से वर्णन नहीं की जा सकी, वह तरण तारण हो जाता है। जिस परमानन्द का यशोदा माता को लाभ हुआ, वह शिव और लक्ष्मी को नहीं प्राप्त हुआ, अन्य की गिनती ही क्या है, भगवत् इस बात के साक्षी हैं, एक शिक्षा भगवत् की सुनाता हूं, सुन–

जब यशोदा जी ने बहुत धूम धाम करने के कारण से उस ढीठ और ऊधमी बालक को ऊखल में बांधने का विचार किया, तो यह बात सुन कर सब गोपिकायें प्रसन्न हुईं कि आज सब ढिठाई का बदला हो जायगा। ऐसा विचार कर गोपियां अपने २ घर से रस्सी ले ले कर दौड़ीं और मन में यह कामना थी कि इसी बहाने से उस परम सुन्दर को देख आवें। जब यशोदा जी बांधने लगीं, तो सब रस्सियां दो अंगुल घट जांय, यहां तक कि किसी गोपी के घर रस्सी न रही और भगवत् न बन्धे। तब तो यशोदा जी को बड़ी लज्जा आयी, शरीर में पसीना आगया। यह देख कर कृपासिंधु तुरन्त बन्ध गये। इस चरित्र से भगवान् यह शिक्षा देते हैं कि मेरे बन्ध जाने में केवल दो अंगुल का बीच है। एक अंगुल का तो भक्त की ओर से अर्थात् परिश्रम और उपाय करना और दूसरा एक अंगुल का मेरी ओर से अर्थात् करुणा और दयालुता। जब भक्त की ओर से परिश्रम और उपाय होता है और उसके कारण से मैं उसके ऊपर दया करता हूं, तो तुरन्त बन्ध जाता हूं अर्थात् ढूंढने वाले को मिल जाता हूं।

कुं:–भगवत रीझें प्रेम, अन्य रीति से नांहि।
मातु यशोदा प्रेम बश, बांधे ऊखल मांहि॥
बांधे ऊखल मांहि, विश्वकर्ता सर्वेश्वर।
नहीं ध्यान में आंय, जिन्हें ऋषि मुनियोगेश्वर॥
भोला! भज श्रीकृष्ण, एक शाश्वत अज अच्युत।
अन्य भांति से नांहि, प्रेम से रीझें भगवत्॥

कथा विट्ठलनाथ जी की।

बिट्ठलनाथ गोसाईं वल्लभाचार्य के पुत्र, जिनकी कथा धर्मप्रचारक निष्ठा में कह आया हूं, वात्सल्यनिष्ठा के ऐसे परमभक्त थे कि जो सुख वात्सल्य का नन्दबाबा को हुआ था, वह ही भगवत् ने कृपा करके इनको दिया। इनकी रीति थी कि रात दिन भगवत् आराधन, लाड लड़ाने, खिलाने, राग भोग की तैयारी और सेवा में लगे रहते थे। प्रभात ही भगवत् को जगाना, मुखारविन्द धोना, कुछ भोजन कराना, फिर स्नान कराना, वस्त्राभूषण पहिनाना, शृंगार कराना, अनेक प्रकार के खिलोने ढूंढ कर लाना, सेज बिछाना शयन कराना और दूसरे सब बालचरित्रों में तत्पर रहना, यह सब आराधन एक वार ही नहीं, सात वार करते थे। तात्पर्य यह है कि सेवा और आराधना के सिवाय इनकी चित्त की वृत्ति दूसरी ओर

नहीं जाती थी। जैसा कुछ वास्तव में गोकुल और नन्दराय जी का समाज था, वैसा ही शोभा का सामान इन्होंने अपने सेवकों के हृदय में प्रकट कर दिया था। इसमें सन्देह नहीं कि विट्ठलनाथ जी ने कलियुग को द्वापर बना दिया था। यद्यपि इनको ध्यान में भगवत् के बाल चरित्रों का दर्शन साक्षात दर्शनों के समान होता था, तो भी एक बार इनकी यह चाहना हुई कि साक्षात् भगवत् के बालचरित्र देखें। भगवत् ने इनका मनोरथ पूर्ण करना उचित समझ कर आज्ञादी कि हम अपने आवेश अवतार से अपने बालचरित्र दिखलायेंगे। जब गिरिधर को बड़े पुत्र उत्पन्न हुए तो उनके शरीर में भगवत् की कलाने प्रवेश किया और विट्ठलनाथ जी को बाल चरित्र दिखलाये। जब गिरधर जी ५ वर्ष की अवस्था से अधिक हुए तो वही कला गिरधर जी से अलग होकर दूसरे पुत्र के शरीर में आगयी। इस प्रकार सात पुत्र हुए और सब में भगवत् ने अपनी कला का प्रवेश करके बालचरित्र दिखाये।

एक बार भगवत् बन्दर को देख कर डरे और भाग कर विट्ठलनाथ की गोद में आ छुपे। उसी घड़ी विट्ठलनाथ जी को भगवत् की ईश्वरता का ध्यान था, प्रेम से गोद में बैठा कर प्यार करके बोले कि जिस घड़ी लंका पर चढ़े थे और काल के सदृश असंख्य बन्दर साथ में थे, उस समय तो कभी न डरे, अब इस छोटे से बन्दर से क्यों डर गये? भगवत् ने हंस कर कहा कि यदि तुम्हारे चित्त की वृत्ति मेरी ईश्वरता पर लगी है, तो बाल-चरित्र की उपासना निष्प्रयोजन है और यदि बालचरित्र की उपासना का निश्चय है, तो उन चरित्रों के कारण पूछने का कुछ प्रयोजन नहीं। मेरे चरित्र और मेरे स्वरूप भक्तवत्सलता और कृपालुता से भक्तों की चाहना के अनुकूल होते हैं, नहीं तो मैं इन बातों से अलग और माया के सब गुणों से परे हूं। विट्ठलनाथ जी इस भगवत् की कृपा से अति आनन्द को प्राप्त हुये।

विट्ठलनाथ जी के सातों पुत्रों के नाम वल्लभाचार्य जी की परंपरा में लिखे हुए हैं, सब आवेश अवतार हुए, उन के नाम से सात गद्दी अबतक गोकुल में विराजमान हैं और विख्यात हैं, इस संसार समुद्र से पार उतारने को मानों सात जहाज हैं। विट्ठलनाथ और उनके पुत्रों की विराजमान की हुई सात मूर्तियों में श्रीनाथ महाराज की एक मूर्ति उदयपुर से बारह कोस पर उत्तर दिशा में विराजमान है, और अब तक नाथ द्वारा प्रसिद्ध है। एक गोकुल चन्द्रमा नाम की मूर्ति जयपुर में है। दोनों स्थानों पर बड़ा भारी गुरुद्वारा है और विट्ठलनाथ के वंश में वही पुजारी और गोसाईं हैं।

कुं–मायापर श्रीकृष्ण हैं, अच्युत देव अनूप।
भक्तों के हित धारते, अद्भुत नाना रूप॥
अद्भुत नाना रूप, भक्त कूं कृष्ण दिखाते।
जैसा जिसका भाव, रूप वैसा बन जाते॥
भोला! तज सब काम, कृष्ण भज, नित्य निरन्तर।
शुद्ध बुद्ध निर्मुक्त, सर्वभासक मायापर॥

भगवान कृष्ण का संदेश

[ले० मि० बी० एल० बी० ए० एल एल० बी० सराफ]

क्रीड़ा की यह भूमि हमारी, यहां दुःखी सब विचर रहे।
पुण्य कुटी के सुख खग हैं, सब भांति भाव से बिखर रहे॥
जीवन है अवसाद पूर्ण क्यों, चिन्तित इनका वेश बना।
कर्म वीर के होते भी, राष्ट्र भाव नैराश्य सना॥
वृन्दावन यह कृष्ण का, दानव वन क्यों बन रहा।
एक ध्येय की प्राप्ति को, वरु युद्ध क्यों ठन रहा॥

मां को जा आश्वासन दो, कह दो, अब सब दुख जाते हैं।
उनके आँसू पोंछ कहो, गोपाल बाल फिर आते हैं॥
कलह दूर सब होती है बस, मुरली तान सुनो उनकी।
प्रेम गोद से आसू पोंछो, बैठ प्रतीक्षा में उनकी॥
दूध दही का उदधि फिर, भारत में बह जायगा।
दानव कुत्सितता निकल, स्वर्ण समय आ जायगा॥
प्यारी माकी सेवा में जा, विजय पुष्प अर्पण कर दो।
समझा के सब उन्हें मुक्त, दुख शोक आदि से अब करदो॥
जर्जर उनके खिन्न देह में, विपद मोद को भी भर दो।
चरणों में फिर नवा शीश, यह नम्र निवेदन भी कर दो॥
मेरे कारण मात हे, कितने तुमने दुख सहे।
जीवन यह किस काम का, दुख यदि वैसे हो रहे॥
मां के दुख को मैं सदा, अपना ही दुख मानता।
मां की बन्धन मुक्ति में, सच्चा सुख हूं मानता॥

दूसरों का भला करने की अपेक्षा स्वयं भला होना कहीं अच्छी बात है।

[ले० श्री स्वामी आत्मानन्द जी]

एक महाजन महाराज कहते थे कि दूसरों का भला करना बहुत अच्छी बात है। भाग्य शाली मनुष्यों से ही यह हो सकता है, किन्तु स्वयं भला होना, इससे कहीं अच्छा है। क्योंकि दूसरों का भला करने में बाहरी साधनों की आवश्यकता है, हाथ में रस्सा हो तो दूसरों को वश में रख सकते हैं, शरीर में बल हो तो दूसरे की सहायता की जा सकती है, बुद्धि हो तो ज्ञान का प्रचार किया जा सकता है, तथा लाज आबरू या गुरुदान आदि वंश परंपरागत कोई बड़ा गुण हो तो बहुत से काम हो सकते हैं अथवा दूसरे मनुष्यों की अपेक्षा जिसके शरीर में, मन में, बुद्धि में या दूसरे किसी काम में कोई मुख्य विशेषता होने पर यदि विचार करें तो वह दूसरोंका कुछ भला कर सकता है किन्तु हमने देखा है कि इस प्रकार के अच्छे साधन होने पर भी बहुत से मनुष्य जैसा चाहिये, वैसे उद्योगी नहीं होते।

इस प्रकार आगे बढ़े हुए गुणी मनुष्यों में विरला ही अपने अन्तः करण की आवाज के अनुसार चलने वाला होता है। और सब तो परम्परागत रिवाजों तथा दिखाव के बाहरी विवेकों में ही रह जाते हैं, क्योंकि दूसरों को उपदेश करना तो सब को आता है, किन्तु कथनानुसार चलना तथा करके दिखाना तो ईश्वर के कृपापात्र भक्तों से ही हो सकता है। कहे मुताबिक चलता है उसके पादु काओं को भी सिर नवाना पड़ता है। इतना भला होने का महात्म्य है, इतना ही नहीं किन्तु दूसरों का भला करने में तो बाहर के सब अच्छे साधनों की आवश्यकता पड़ती है और और बहुत से मनुष्य दूसरों का भला करना तो दूर रहा अपना भी भला नहीं कर सकते किन्तु जो स्वयं उत्तम होते हैं, वे अपने पास बाहरी साधनों के न होने पर भी अपने अच्छे दृष्टांत से अपने बन्धुओं पर बहुत अच्छा प्रभाव डाल सकते हैं।

मैं ने देखा है कि गरीब भक्त अपनी परमार्थ वृत्ति से जितना भला कर सकता है उतना भला नाम के लिये फंडों में हजारों रुपया भरने वाले श्रीमंत नहीं कर सकते। जंगल के एकांत कोने में पड़े हुये मुनि व्रत वाले साधु बिना बोले चाले अपने पवित्र आचरणों से जगत में जैसी पवित्रता फैला सकते हैं वैसी पवित्रता प्रति दिन मन्दिर में कथा कहने वाले शास्त्री नहीं फैला सकते। भगवत्

इच्छा के अनुसार चलने वाले भक्तगण अपने दृष्टांत से अपने बन्धुओं में जैसा धर्म का विश्वास बैठा देते हैं वैसा विश्वास मान मरतबा की इच्छा रखने वाले गुरु नहीं करा सकते, तथा हृदय से उत्पन्न लगन वाले सज्जन अपने निष्काम कर्मों से अपने आस पास जैसा अच्छा प्रभाव डाल सकते हैं वैसा प्रभाव बड़े बड़े पण्डित या अधिकारी नहीं फैला सकते। यह सब उनके स्वयं भला होने का फल है।

इसके विपरीत मैंने यह भी देखा है कि जिसके घर सदाव्रत चलता है वह भी अपनी दुकान पर बैठा बैठा दगा फरेब किया करता है, जो मन्दिर बनवाने वाले होते हैं उनमें से बहुत से लोग अनीति वाले होते हैं, बड़े बड़े भाषण देने वाले पंडितों के भीतर भी पोल होती है, बड़े बड़े शास्त्र पढ़ाने वाले गुरु के भी हृदय में कपट भरा रहता है, बड़े बड़े पाठ पूजा करने वाले भी दुष्ट प्रकृति के होते हैं, त्यागी दिखायी पड़ते हुए साधु भी वासना वाले होते हैं, अनेकों प्रकार की पुस्तक लिखने वाले विद्वान् भी किसी न किसी प्रकार के दुर्गुण वाले होते हैं और एक ओर दान देने वाले धनी मानी लोग भी दूसरी ओर रोजगार धन्धे के द्वारा चोरी करने वाले होते हैं। वे अच्छे नहीं होते। ऐसा होने से दूसरों का भला करने की अपेक्षा स्वयं भला होना बहुत अच्छा है।

दूसरों का भला करना तो संयोग से होता किन्तु स्वयं भला बनने के लिये पुरुषार्थ करना पड़ता है, इसमें मन को मारना पड़ता है, तथा अपनी इच्छा का कुछ त्याग करना पड़ता है। इस से महात्मा गण कहते हैं कि संयोगवश दूसरों का भला करना कोई बड़ी बात नहीं है। ऐसे तो डाकू भी दान देते हैं, व्यभिचारी भी बड़े लहरी होते हैं, जुआरी भी साधुओं की सेवा किया करते हैं, लोभी भी बड़ी बड़ी प्रार्थनायें किया करते हैं और महा पापियों से भी संयोगवश भला कार्य हो जाता है, इस से भला काम करना कोई बड़ी बात नहीं है, किन्तु स्वयं भला बनने में विशेषता है।

इससे प्रियपाठको! यदि आत्मा का कल्याण करना हो तथा ईश्वर के पास जाना हो तो शुद्ध अन्तःकरण से तुम स्वयं भले बनो! तुम स्वयं भले बनो!! तुम स्वयं भले बनो!!!

आदर्श-मित्र

[ले० श्री गंगाविष्णु पाण्डेय विद्याभूषण 'विष्णु']

दक्षिण दिशाके विदर्भ नामक नगरमें सुदामा नाम के एक द्रविड़ ब्राह्मण रहते थे। ये सर्व-शास्त्र-पारदर्शी एवं कर्म निष्ठ तो थे ही, साथ ही साथ एक उच्च ब्राह्मण में जो गुण कर्म होना चाहिये वे सब इनमें वर्तमान थे। इनके कुटुम्ब में ये, इनकी धर्मपत्नी और चार पुत्र थे। दरिद्र देवता की इनके ऊपर ऐसी कृपा थी कि कभी कभी लगातार दो दो दिन तक इन्हें अन्न के दानों से भेंट न होती थी। किन्तु फिर भी ये किसी के यहां माँगने नहीं जाते थे, बिना माँगे ही जो मिल जाता था उसी से अपना और अपने कुटुम्ब का पालन करते थे। इनके घर में कभी भी दूसरे दिन के लिए अन्न नहीं बनता था। रोज मांग के लाना और खाना ही इनका व्यापार था। वस्त्रों का भी यही हाल था, बरसों के फटे, पुराने वस्त्रों से ही दंपति और बालकों का कार्य चलता था, सीते सीते गृह देवी हैरान हो जाती थी किन्तु वे वस्त्र इनका पीछा

नहीं छोड़ते थे। हाँ, कहां से ये न कोई व्यापार करते थे, न किसी से माँगते थे। यदि किसी ने दे दिये तो ले लिये अन्यथा जो थे उन्हीं से संतुष्ट रहते थे और दुःख सुख को समान मान कर अपने धर्म में लगे रहते थे। जैसे ईश्वर भक्त और साधु ये थे भाग्य वश वैसी ही इन्हें साध्वी स्त्री भी मिल गई थी। सुदामा की स्त्री का नाम था सुशीला। सुशीला वास्तव में सुशीला थी। तीन तीन दिन तक भूखी रह कर वह प्रेम से अपने पति की सेवा और बच्चों का लालन पालन किया करती थी साध्वी स्त्री के कर्तव्य से वह स्वप्न में भी विमुख न होती थी। भोजन वस्त्र और आभूषणों के लिये तो कभी उसने सुदामा से तकाज़ा करना जाना ही नहीं। जो मिल गया तो खालिया नहीं तो योंही पड़ी रहती थी दोनों सदाचार की मूर्ति थे।

एक बार ऐसा प्रसंग आया कि इस दरिद्र कुटुम्ब को दो उपवास हो गये और कहीं कुछ न मिला तीसरे दिन भूख से व्याकुल होकर जब छोटे बच्चे रोने लगे तो सुशीला का धैर्य जाता रहा और वह हाथ जोड़ कर डरती हुई सुदामा से बोली, नाथ! बच्चे भूख के मारे बिलख रहे हैं। फिर भी आप कोई प्रयत्न नहीं करते! चुपचाप बैठे हैं? यदि भिक्षा से कार्य नहीं चलता तो किसी पड़ोसी या कुटुम्बी के यहां से ही कुछ प्रबन्ध कीजिये अथवा किसी मित्र से याचना कीजिये क्योंकि अब तो उदर की ज्वाला नहीं सही जाती। मैं अकेली होती तो चाहे जैसे काट देती किन्तु इन छोटे २ बच्चों का रोना कलपना तो मुझसे नहीं देखा जाता। हाय हम लोग बड़े अभागी हैं। पूर्व जन्म में न जाने हमने कौन से पाप किये हैं जिससे ये कष्ट भोग रहे हैं।

सुदामा, हंस कर बोले, सुशीले! आज तुमने अपना धैर्य क्यों छोड़ दिया? तुम्हारा वह पूर्ण संतोष कहां चला गया? क्या भूख की ज्वाला को तुम नहीं दबा सकती। देखती नहीं दो मैं लगातार भिक्षा को जाता हूं किन्तु भिक्षा नहीं मिलती, फिर मैं क्या करूं? पड़ोसियों से मैं कई बार उधार ले चुका हूं, और कुटुम्बियों के पास ऐसे समय में मांगने जाना मैं उचित नहीं समझता हूं। रह गये मित्र, सो वे इस संसार में दो हैं, एक दरिद्र नारायण और दूसरे कृष्ण। दरिद्र नारायण तो सदा मुझ पर दया करके मेरे ही यहां पड़े रहते हैं, दूसरे यहां से बहुत दूर द्वारिका में रहते हैं। और उनका नाम है कृष्ण। हमारी उनकी साधारण मित्रता नहीं घनिष्ठ मित्रता है। वे हमारे पक्के मित्र हैं। हम और वे दोनों उज्जयिनी पुरी में सांदीपनि गुरु के यहां रहकर एक ही साथ पढ़े हैं। मित्रता के नाते से तो हम इतने भाग्यवान् हैं कि शायद ही संसार में ऐसा और कोई मनुष्य हो किन्तु मैंने माँगने के लिये उनसे मित्रता नहीं की है। कुछ लेने के खयाल से मित्रता करना मित्रता नहीं कलंकता है।

सुशीला बोली, प्राणनाथ! जिसके मित्र कृष्ण हों उसकी यह दशा! जब वे तुम्हारे परममित्र और गुरुभाई हैं तो उनके पास जानेमें तुम्हेंक्या संकोच है। उन्होंने तो गो ब्राह्मणोंकी रक्षा करनेही के लिये अवतार लिया है न। आप निःसन्देह उनके पास जाइये वहां जाने से हम लोगों का दरिद्र दूर हो जायगा। गृहस्थ ब्राह्मण समझ कर वे तुम्हें अटूट धन देंगे और फिर यह रोज रोज की भिक्षा का झगड़ा न रह जायगा। वहां जाने से तुम्हें इच्छित वस्तु प्राप्त हो जायगी तथा साथ ही साथ कृष्ण दर्शन भी हो जायगें। यह कहाँ की रीति है कि एक मित्र राज्य भोगें और एक मित्र भीख मांगे। अतः

आप अवश्य द्वारिका जाइये।

संतोष मूर्ति-सुदामा ने उत्तर दिया प्रिये! आज तुम्हें यह तृष्णा कहाँ से उत्पन्न होगई। क्या तुम भूल गई कि मांगने से ब्रह्मतेज नष्ट हो जाता है। जैसे जिन्दगी के इतने दिन व्यतीत हो गये हैं वैसे ही ईश्वर की कृपा से शेष दिन भी व्यतीत हो जायंगे ऐसी दशा में मित्र के पास जाने से संसार में लोग मेरी निन्दा करेंगे निर्धन अवस्था में रह कर जैसा भगवान् का भजन पूजन होता है वैसा धनी होने पर नहीं बनता तुच्छ धन के लिए मैं उनके पास जाऊं यह तो विडंबना नहीं महा विडंबना है। यदि पूर्वजन्म में मैंने दान दिया होता, तो मुझे इस जन्म में धन धान मिलता। जब दिया ही नहीं तो पाने की आशा करना वृथा है। जैसा चल रहा है वैसा ही चलने दो।

सुशीला इनके उत्तर से हृदय में बहुत दुःखी हुई और सकुचती हुई पुनः बोली नाथ! क्षमा कीजिये मैं अपने लिए इतना आग्रह नहीं कर रही हूं, किन्तु इन छोटे छोटे बच्चों का ख्याल करके बार बार द्वारका जाने के लिए आपसे कह रही हूँ सोचिये, इनका पालन पोषण करना भी तो हमारा आपका कर्तव्य है, यदि ये भूख से मर जायंगे तो क्या आपको इसका प्रायश्चित्त न करना होगा? कहिये मैंने अपने लिए कभी आप से कुछ कहा है?

सुदामा ने बहुत कुछ इन्कार किया किन्तु गृहिणी के हठ करने पर विवश होकर उन्हें जाने को बाध्य होना पड़ा। वे तैय्यार तो हो गये किन्तु उन्हें यह फिक्र हुई कि बरसों में मैं मित्र के पास जा रहा हूं, फिर भी यदि कुछ भेंट न ले जाऊंगा तो कैसे ठीक होगा यह सोच कर गृहिणी से बोले प्रिये! शास्त्र की आज्ञा है कि जब किसी गुरुजन अथवा प्रियजन के यहाँ जाय तो कुछ भेंट अवश्य ले जाय। किन्तु मेरे पास तो कुछ है ही नहीं जो मैं उनके लिए ले जाऊं अब तुम्हीं बताओ मैं कैसे जाऊं? छूछे हाथ वहां जाकर खड़ा हो जाना क्या अच्छा लगेगा। सुशीला थोड़ी देर तक सोचती रही और फिर बोली अच्छा मैं अपनी पड़ोसिनों से कुछ मांगकर ले आती हूं उसी को लेकर आप जाइये।

अस कहि उठि बाहर गई तुरत विप्र की नारि।
लै आई घर चारिते चाउर मूठी चारि (भक्तमाला)

ऐसा कहकर वह देवी घाट द्वार से चार मुट्ठी चांवल मांग लाई और सात परत के एक चिथड़े में उन्हें बान्ध कर पति को देकर कहने लगी, लीजिये अपने मित्र के लिए यह भेंट लीजिये, अब तो आप जायंगे?

भेंट को सुदामा ने बड़ी सावधानी के साथ रखलिया और फटे पुराने वस्त्रों को किसी प्रकार पहिन कर स्त्री पुत्रों से विदा होकर एक फटे बांस की छड़ी को टेकते हुए नंगे पैरों द्वारिका को चल पड़े। रास्ते में मन में नाना प्रकार के तर्क वितर्क करते जाते थे। कभी कहते थे कि इतनी दूर द्वारिका तक कैसे पहुंचूगा? भाग्यवश यदि वहां पहुंच भी गया तो उनके पास तक मेरी रसाई कैसे होगी? द्वारपालवान मुझे भीतर कैसे जाने देंगे। मेरा सन्देश उनको कौन पहुंचायेगा। जब साधारण राजाओं के दरबार में बड़े २ लोग नहीं जाने पाते तो त्रिभुवन पति के दरबार में मुझ कङ्गाल को कौन जाने देगा? कभी विचारते थे साध्वी सुशीला मेरे कारण कितना कष्ट भोग रही है, मेरे साथ पाणिग्रहण करके इसने (सिवा दुःख के) क्या सुख पाया है? स्त्रियां सुख में ही पति की अनुगामिनी रहती हैं, दुःख के समय बहुधा विरक्त हो जाती और बात

बात में लड़ने लगती है किन्तु साध्वी सुशीला ने तो मुझ से कभी एक शब्द तक जोर से नहीं कहा। कभी कहते थे, कि क्या जाने कृष्ण हमें पहिचानेंगे कि नहीं। क्योंकि जब हम दोनों छोटे थे तब हमारी उनकी भेंट हुई थी और अब वे राजाधिराज हैं और मैं एक दीनातिदीन ब्राह्मण हूं। संभव है कि पहिचान करके भी वे मुझ से न मिलें या मेरा निरादर करें। ऐसी दशा में मेरा मरण ही हो जायगा। कभी सोचते थे कि मैंने बड़ी भूल की जो सुशीला की बातों में आकर घर से निकल पड़ा झोपड़ी भी गई (भाई सुदामा तुम्हारी झोंपड़ी तो सचमुच गई अब तो वह नहीं मिलती उसके स्थान में महल भले ही मिल जाँय) जिसमें सुख से दिन व्यतीत करता था और द्वारिका पहुंचना भी कठिन है। अब यदि लौटता हूं तो और हंसी होगी, इससे चलना ही चाहिये, जो कुछ भाग्य में बदा होगा, होगा कुछ न होगा तो कृष्ण के दर्शन तो होंगे, ही यह कौन कमलाक्ष है। इसके लिए तो बड़े बड़े योगी मुँह बाये बैठे रहते हैं किन्तु सफल नहीं होते।

इस प्रकार मार्गमें विचारते हुए सुदामा कई दिन में द्वारिकापुरी के समीप पहुंचे किन्तु गम्भीर समुद्र को देख कर चिन्ता में पड़ गये। बड़ी देर तक किनारे पर बैठे रहे और फिर नाविकों से बोले, भाई! हम कृष्ण के मित्र हैं, द्वारिका को जाना है अतः हमें जहाज पर चढ़ाके पार उतार दो। धन तो हमारे पास है नहीं, चार मुट्ठी चावल हैं। जो कृष्ण की भेंट के लिए, लिए जा रहे हैं यदि चाहो तो उसमें से एक मुट्ठी ले लो। नाविक-"हम कृष्ण के मित्र हैं" एक मुट्ठी चावल चाहो तो ले लो, सुदामा की ये सीधी-साधी बातें सुन कर बहुत हंसे (उन्हें यह क्या मालूम था कि यह ब्राह्मण जो कुछ कह रहा है अक्षरशः सत्य है, सत्य ही है। और हाथ जोड़ कर बोले! महाराज, आप लोगों की ही कृपा से हम लोग संसार सागर से से पार होते हैं, किराये की आवश्यकता नहीं है यह पोत हमारे स्वामी की ओर से इसी कार्य के लिए नियत है। आइये बैठिये हम आप को शहर में पहुंचादें। सुदामा बड़े प्रसन्न हुए (क्योंकि एक मुट्ठी चावल बच गये और पोत में बैठकर द्वारिका में पहुंच गये। गांव के रहने वाले सुदामा ने अपनी झोंपड़ी के सिवाय कभी द्वारिका के ऐसे राज महल स्वप्न में भी न देखे थे, जहां जाते थे, वहीं भौचक से खड़े हो जाते थे। राजसी ठाठ-बाट देख कर किसी से पूछने में भी घबड़ाते थे। चलते आगे थे किन्तु लौट लौट कर पीछे देखते जाते थे कि कोई हमें रोक तो नहीं रहा है। द्वारिका के राज महलों में ब्राह्मण मात्र सर्वत्र बिना रोक टोक जा सकता था किसी को उसके रोकने का अधिकार न था। कृष्ण ने द्वारपालों को आज्ञा दे रखी थी कोई हो जो हमसे मिलने के लिए आवे फौरन उसकी सूचना हमें दो इसमें कभी भी फेर-फार न हो न कोई विमुख होकर लौटने पावे। यदि ऐसा हुआ तो तुम लोगों को कठोर दण्ड दिया जायगा। कृष्ण की इसी ब्राह्मण वत्सलता के कारण किसी को दरिद्र सुदामा के रोकने का साहस न हुआ और वे धीरे धीरे कई ड्योढ़ियों को पार करके मुख्य ड्योढ़ी पर पहुंच गये और वहां ठिठुक कर सोचने लगे कि मेरे मित्र कृष्ण कहाँ मिलेंगे! मैं अब कौन से महल में जाऊं और कैसे कृष्ण को पाऊं? बिना जाने बूझे यदि मैं किसी दूसरे के महल में घुस गया तो लोग मुझे मूर्ख समझ कर मेरा तिरस्कार करेंगे। यही मेरे बड़े भाग्य हैं जो मैं यहाँ तक चला आया और मुझे किसी ने नहीं रोका। सिवा कृष्ण के और कोई मुझे पहिचानता भी नहीं ऐसा न हो कि कोई

रोक दे। इतनी दूर आकर मित्र से बिना भेंट किये वापिस जाना भी अच्छा नहीं है सुशीला जब पूछेगी तो मैं क्या जवाब दूंगा कि द्वारिका जाकर भी बिना कृष्ण से भेंट किये लौट आया? अतः कृष्ण से भेंट करना जरूरी है और उसका एक मात्र यही उपाय है कि द्वारपाल के द्वारा मैं अपने आने का संदेश भेजूँ ? यदि उन्हें मेरा स्मरण होगा तो तो वे अवश्य मिलेंगे और मुझे भीतर ले जायेंगे अन्यथा मैं यहीं से लौट पड़ूँगा। बिना आज्ञा शाही महलों में जाना अच्छा नहीं। अस्तु, जैसे तैसे महल में चकित चित्त और भयभीत होकर डरते डरते द्वारपाल से बोले। भइया, द्वारपाल! हम कृष्ण के पुराने मित्र हैं, हमारा नाम सुदामा है, तुम जहां वे हों जाकर उनसे हमारा सदेशा कह दो कि तुम्हारे मित्र (सुदामा ब्राह्मण) आये हैं और तुमसे मिलना चाहते हैं फिर जैसा वे उत्तर दें हम से कह दो।

सुदामा के ब्रह्म तेज से प्रभावित होकर द्वारपाल ने उन्हें सादर प्रणाम किया और उसी क्षण जहाँ भगवान कृष्ण अपनी विभूतियों के साथ विनोद कर रहे थे वहां पहुंच कर नम्रता पूर्वक उसने उक्त संदेशा कह सुनाया। सुदामा का नाम सुनते ही "मेरो मीत आयो अरी मेरो मीत आयो, अरी मेरो मीत आयो अस गाय मुख धायो है" यह कहते हुए ब्रह्मण्य कृष्ण रुक्मिणी के पास से सिंहासन से उठकर दौड़े और प्रेम से आसुवों को बहाते हुए जाकर सुदामा (जो कि द्वारपाल के संदेश की प्रतीक्षा कर रहे थे) से लिपट गये। सुदामा के बड़े बड़े बालों में किरट उलझ गया, फटे वस्त्रों के चिथड़ों में पीतांबर फंस गया, तुलसी की माला से दबकर मोतियों की माला टूट गई किन्तु राजसी ठाठ वाले उस ब्रह्मण्य कृष्ण ने धूलि धूसरित दरिद्र मूर्ति सुदामा को हृदय से लगाकर बड़ी देर तक भेंट की और फिर बेवाई फटे हुए उनके चरणों की धूलि अपने शिर पर चढ़ाई। त्रिभुवन जिनकी चरणरज पाने के लिए नाना प्रयत्न करता है वही त्रिभुवनपति कृष्ण एक दीन दरिद्र किन्तु सच्चे ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण की चरणरज शिर पर चढ़ाते हैं इसे कहते हैं आदर्श मित्रता रासी मंडल और भृत्यवर्ग कृष्ण का यह अद्भुत कार्य देख कर आश्चर्य चकित हो रहा है, कोई मुख फेर कर हँस रहा है और कोई कृष्ण की सादगी की प्रशंसा कर रहा है।

कृष्ण की उदारता और सरलता देख कर सुदामा अपने को भूल गये और चित्र लिखे से खड़े रह गये। जब उनका हर्षातिरेक कुछ कम हुआ तो वे कृष्ण के चरणों पर गिरने के लिये दौड़े किन्तु इसके पूर्व ही कृष्ण ने उन्हें हृदय से लगा लिया। और बोले, मित्र! आज अनायास बहुत दिन के बाद आपका दर्शन हुआ यह हमारे पूर्व पुण्यों का फल है तुम हमारे यहां आये हो। कहो सब कुशल तो है? हमारी भाभी आनन्द में हैं, बालक अच्छे हैं किन्तु संकोची सुदामा ने कोई उत्तर नहीं दिया शिर नीचा करके रह गये। कृष्ण सुदामा का हाथ पकड़ कर उन्हें अपने महलों में ले गये और मणि जटित स्वच्छ बिछौने वाली अपनी स्वर्णशय्या पर बैठाया और रुक्मणी को (दासियों को नहीं) आज्ञा दी कि तुम सोने की परात और जल लेकर जल्दी आओ। जब तक रुक्मणी जल लेने गई तब तक अपने हाथों से पीताम्बर से उनके पैरों की धूल झाड़ी और धीरे धीरे कांटे निकाले। जल आजाने पर खुद अपने हाथों से सुदामा के चरण धोये और उस जल को अपने सिर पर सींचकर घर में छिड़कने की सेवकों को आज्ञा दी। रुक्मणी आदि

रानियों ने बहुत कुछ चाहा कि हम उनके चरण धोके पीवें किन्तु प्रेमी कृष्ण ने ऐसा न करने दिया। कृष्ण ज्यों ज्यों सुदामा के पैर पकड़ कर धोते थे त्यों त्यों सुदामा लज्जित होकर अपने पैर सिकोड़ते जाते थे। पैर धोने के बाद अपने पीताम्बर से उनके पैर पोंछे शरीर में चन्दन लगाया और स्वच्छ वस्त्र पहिनाये।

अब तक इधर सुदामा का ठाठ बाट हो रहा था तब तक उधर रसोई तैयार हो गई रुक्मिणी और सत्यभामा परोसने लगीं और कृष्णचन्द्र बैठकर प्रत्येक व्यंजनों का नाम बता बता कर स्वाद पूर्वक धीरे धीरे खाने का आग्रह करने लगे। सुगन्धित जल पीने को दिया फिर अपने हाथों से सुदामा के हाथ धुला कर उन्हें शयनागार में ले जाकर अपने पलंग पर बैठाया। रुक्मिणी ने पान इलायची दी। कृष्ण ने माला पहिनाई और आरती उतार कर प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा कर चुकने के बाद सुदामा से आराम करने की प्रार्थना करके कृष्ण भोजन को गये और रुक्मिणी उन्हें पंखा करने लगी। वापिस आकर राजा (कृष्ण) और महाराजा (सुदामा), देव (कृष्ण) और भूदेव, जटाजूट और मुकुट वाला, चिरकुट तथा पीताम्बर वाला, बिवाई फटे पैर वाला और कंचल वाला, दीन और दीनानाथ दोनों एक साथ पलंग पर बैठे और चारों ओर रानियां पटरानियां तथा कुटुम्बी जन यथा योग्य आसीन हो गये।

सुदामा और कृष्ण को एक साथ पर्यंक पर बैठे देख कर सब स्त्रियाँ और यदुवंशी बड़े चकित हुए और आपस में कहने लगे संसार में यह ब्राह्मण धन्य है। त्रिभुवनपति ने इसके पैर धोये इसके चरणों के स्वयं कांटे निकाले। चिरकुट पहिने हुए इससे हृदय से हृदय लगाकर मिले, और अब इसे अपने साथ पर्यंक पर बैठाते हैं तथा बार बार मित्र मित्र कहकर इसे बुला रहे हैं। यह दरिद्री बड़ा भाग्यवान् है। रूपवान और धनवान् का प्रायः सब आदर करते हैं किंतु दरिद्री का कोई आदर नहीं करते। न जाने इसमें क्या गुण है जो कृष्ण इसकी सेवा अपने हाथों से कर रहे हैं।

पटरानियों में सत्यभामा बड़ी वाचाल थीं। हंस कर कृष्ण से बोली कि महाराज! आप तो सदा हम लोगों के सामने लम्बी चौड़ी बातें मारा करते थे किन्तु आज आपके मित्र को देखने से आपकी पोलपट्टी खुल गयी। संसार की रीति है कि जो जैसा होता है वैसा ही उसका मित्र भी होता है। शायद ये तुम्हारे गोकुल के छुटपन के मित्र होंगे जब तुम कमरी ओढ़े गैया चराया करते थे और दही-दूध चुराकर खाया करते थे। पहिले मैं इन बातों को झूठ समझती थी किन्तु आज आप के मित्र को देख कर विश्वास हो गया कि ये सब बातें सत्य थीं।

कृष्ण ने उत्तर दिया, हां राजकुमारी तुम्हारा कहना बिलकुल सत्य है, हमारे ये छुटपन के मित्र हैं? किंतु ऐसे वैसे नहीं अभिन्न हृदय पक्के मित्र हैं। रह गई माखन चुरा कर खाने की बात, सो यदि मैं लड़कपन में चुरा चुरा कर माखन खाके हृष्ट पुष्ट न हुआ होता तो तुम्हारे पिता को मणि देकर कैसे संतुष्ट कर सकता और तुम्हें कैसे पाता। तुम लोगों को ये भले ही दीन हीन दिखते हों क्योंकि तुम राजकुमारियां हो किन्तु मुझे तो ये मित्र रूप में अपने ही सदृश दीख रहे हैं। दृष्टि ही तो है सब की एकसी नहीं होती। इनको तुम लोगों ने कैसे दरिद्र मान लिया यह मेरी समझ में नहीं आता ये तो महाधनी हैं और मुझ से भी बड़े हैं मैं तो राजा भी नहीं (उग्रसेन का सेवक हूं)

और यह महाराजा है। मुझे कुछ लोग वन्दना करते हैं और इन्हें संसार शिर झुकाता है। मेरे पास अचिरस्थायी धन है और इनके पास अक्षय विद्यानिधि है, मैं क्षत्रिय हूं, यह अग्रजन्मा है। मेरे भुजदण्डों से भी जो कार्य नहीं हो सका उसे इनकी संयत वाणी सहज में पूरा कर देती है।

सुदामा के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि शायद आपने मुझे पहचाना नहीं किसी दूसरे के धोखे से मेरा इतना सत्कार कर रहे हैं कृष्ण-चन्द्र इस बात को ताड़ गये और समयानुसार सुदामा से बोले, मित्र आज बहुत दिनों में हमारी आपकी भेंट हुई है। मुझे हरदम तुम्हारी याद आती रहती थी किन्तु, दुर्भाग्य वश आप का दर्शन नहीं हो सका था। आज मेरी आपने स्वयं दर्शन देकर वह साध पुरी करदी। मित्र! तुम भी कभी मेरी याद करते थे या नहीं? मित्र तुम्हें स्मरण है कि जब हम तुम दोनों सांदीपनि गुरु के यहाँ पढ़ते थे गुरुजी ने कृपा पूर्वक हम लोगों को जो विद्या पढ़ाई है उससे हम आजन्म उऋण नहीं हो सक्ते। मित्र! तुमने भी पढ़ने लिखने में हमें बड़ी सहायता दी थी। एक बार गुरुजी की स्त्री ने जब हम दोनों से बन से लकड़ी तोड़ लाने को कहा था तब तुमने हमारे हिस्से की भी लकड़ी हमें तोड़ दी थी और फिर हम दोनों शिर पर लकड़ी के गट्ठे लेकर जब घर चले तथा रास्ते में आंधी आई और पानी बरसने लगा, घनघोर अंधकार छा गया, हाथ पसारे से भी नहीं सूझता था। हम लोग रास्ता भूलकर घने जंगल में पहुंच गये और रात को एक वृक्ष के नीचे पड़ रहे। उस समय भी तुमने अपने छोटे भाई के सदृश हमारी रक्षा की और भूख लगने पर हमें बेर खिलाये थे। रात को जब हम लोग घर न पहुंचे थे तो गुरुजी हमको ढूंढते हुये जंगल में आये थे और हम लोगों को सरदी से कांपते देख कर दौड़ कर हृदय से लगा लिया था और आशीर्वाद दिया था कि तुम्हारी विद्या सफल हो। मित्र! विद्या पढ़कर मैं मथुरा चला आया और तुम अपने घर चले गये। तब से आज भेंट हुई है। कहिये आपका विवाह कहाँ हुआ और पुत्र पुत्रियां कितनी हैं? छिपाने या शरमाने की कोई बात नहीं है क्यों कि हममें और तुममें कुछ अन्तर नहीं है। जिस प्रकार तुम मुझे चाहते हो उसी प्रकार मैं तुम्हें चाहता हूं दोनों की प्रीति सुदृढ़ है।

अपूर्ण

ज्ञान और भक्ति का तारतम्य।

गतांक से आगे

[ले० श्री भक्तरत्न मथुराप्रसाद जी रिटायर्ड जज]

गत अंकों में कर्म और ज्ञान की अपेक्षा उपासना 'भक्ति' का उत्कर्ष युक्ति युक्त तथा सप्रमाण सिद्ध किया जा चुका है अब यह निवेदन आवश्यक प्रतीत होता है कि संसारी किसी व्यक्ति में यदि उत्कट प्रेम उत्पन्न हो जाय तो वही प्रेम परमात्मा में प्रेम का कारण होजाता है इसी लिये कहावत है कि 'मजाज़ी इश्क हकीकी इश्क की सीढ़ी है' इस के कुछ उदाहरण दिये जाते हैं सो ध्यान देकर सुनिये।

एक महात्मा से उनके शिष्य ने भगवत् प्राप्ति का उपाय पूछा, महात्मा ने उसे अधिकारी समझ कर आज्ञा दी कि शहर में चला जा जो व्यक्ति तुझे अति प्यारी लगे उसी को तू अपना इष्ट और परमात्मा समझ कर उसी की आज्ञा पालन करना, शिष्य नगर में गया और बाजार में एक जौहरी की दुकान पर उस की दृष्टि एक ग्यारह वर्ष के लड़के

पर पड़ी जो जौहरी का पुत्र था और आकृति उस की अतीव सुन्दर मनोहारी थी। बस उसी पर मोहित होकर दुकान के सामने खड़ा रह कर उसी को निहारने लगा। उसका प्रेम इस दर्जे का उस जौहरी के पुत्र पर होगया कि अपने शरीर की सुध भूल कर जब तक वो लड़का दुकान पर रहता उस के सन्मुख खड़ा रहता था। एक क्षण भी दृष्टि उस पर से नहीं हटाता और जब वह अपने घर जाता उसके पीछे २ जाकर घरके बाहिर उसी की प्रतीक्षा में खड़ा रहता था। जब वह लड़का दुकान पर आता उसके पीछे २ चला आता और नियत स्थान पर उपस्थित हो जाता था। कई दिन इसी प्रकार बीत गये खाने पीने की कुछ परवाह उसे न थी। यदि कोई उसके खड़े रहने का कारण पूछता तो कह देता कि मैं अपने इष्ट देव के दर्शन कर रहा हूँ ये ही परमात्मा हैं और मेरा जीवन प्राण ये ही हैं। जब एक सप्ताह इसी दशा में व्यतीत होगया तो चर्चा इस की सारे नगर में फैल गई। उस लड़के के पिता से लोगों ने कहा कि एक साधु के तुम्हारे पुत्र पर आशिक होने और उसे घूरते रहने की चर्चा फैल गई है तुम्हारी बड़ी अपकीर्ति हो रही है ऐसा प्रबन्ध कर दो कि यह मनुष्य यहाँ से चला जाय। फिर सब की यह सम्मति हुई कि लड़के की जबान से ऐसा कहला दिया जाय कि तू यहाँ से चला जा और फिर कभी मत आना। लड़के से जिसका नाम मनोहर लाल था पिता ने कहा कि उस साधु से ऐसा कह दे, परन्तु लड़के की जिह्वा से ऐसे शब्द न निकले, निकलते क्योंकर, प्रेमी के प्रेम का असर प्रेम पात्र के दिलमें पहले होजाता है, सच कहा है।

प्रेम प्रथम उपजै अवश प्यारे के हिय माय,।
दीपक पहले जरत है फिर पतंग जर जाय॥

इसी बातको फारसी भाषा में कहा है।

इश्क अव्वलदर दिले माशूक पैदामे शवद।
तान सोज़द शमा के परवाना शैदा मीशवद॥

जब यह यत्न सफल न हुआ तो दूसरा उपाय यह सोचा गया कि लड़के की जिह्वा से यह शब्द साधु को कहलाये गये कि अंडे के सामान मोती दसपैर वज़न में चाहियें सो कहीं से लादो। प्रेमी ने ज्यों इष्टदेव (जौहरीपुत्र) से ऐसी आज्ञा पाई आनंद सिंधु उसके हृदय में लहराने लगा और सबके सन्मुख नाचता हुआ बोला कि धन्य भाग मेरे आज इष्ट देवने मुझे अपना सेवक मानकर एक आज्ञा तो दी। (यह ज्ञान उसे न था कि मोती इतना बड़ा मिलना असंभव है और यह आज्ञा उसे दूर भागने के लिये दिलाई गई है) कुछ समय के अनन्तर उसे चेत हुआ। तो इष्टदेव को दंडवत प्रणाम करके चलदिया। उस का पहला कर्तव्य यह था कि इतने बड़े मोती कहाँ उत्पन्न होते हैं इसकी खोज लगाये। जौहरियों की दुकानदुकान पर जा के उसने पूछा कि अंडे की बराबर मोटे मोती कहां उपजते हैं और किसी के पास दोचार हों तो दिखादें। परन्तु किसी दुकान पर एकभी वैसा मोती न निकला केवल यह उत्तर मिला कि ऐसे मोती समुद्र में होते हैं और कहीं नहीं बस पता लगते ही यह प्रेम दीवाना मस्ताना समुद्र की तरफ चल दिया। दिन रात यात्रा करते हुए जल्दी ही समुद्र तट पर पहुँच गया। एकदिन और एक रात तो इसने समुद्र से प्रार्थना करने में गुजारदी परन्तु समुद्र ने इसकी पुकार न सुनी तब इसे क्रोध आया और क्रोधावेश में इसे यह उपाय सूझा कि इसे खाली कर दिया जाय तो अन्दर से मोती उभर निकल आवेंगे। इसने एक पड़ा हुआ मिट्टी का ठीकरा पृथ्वी पर पड़ा देख उसे उठा लिया और लगा समुद्र का जल उलीचने। एक ठीकरा भरे और

दूर जाकर फेंकदे।

ऐसा करते २ आठ दिन बीत गये। न इसने अन्न लिया न जल, इष्टदेव का स्मरण ही इसका जीवन था और दर्शन आशा ने ही प्राण इसके शरीर में ठैराये रक्खे दैवेच्छा से महर्षी अगस्त्य जी उधर आ निकले, उन्होंने इस प्रेमी साधु से पूछा कि यह क्या कर रहा है। उसने उत्तर दिया, महाराज समुद्र को खाली कर रहा हूं:-

अगस्त्य जी बोले, अरे पागल तू यह नहीं विचारता कि इतना बड़ा समुद्र कहीं मनुष्य से खाली हो सकता है। उत्तर दिया कि महाराज इस जन्म में इस शरीर से जितना खाली हो सकेगा करूंगा। पीछे मरकर दूसरे शरीर से करूंगा, जो जो शरीर मरने के पीछे मिलता जायगा उससे ये ही काम करता रहूंगा। कभी किसी जन्म में तो खाली कर ही डालूंगा। फिर महर्षि ने प्रश्न किया कि समुद्र ने तेरा क्या बिगाड़ा है जो ऐसा करने पर तू उद्यत हो गया जल्दी से बता कि तेरा प्रयोजन क्या है। प्रेमी बोला, महाराज मेरे इष्ट भगवान ने मुझे आज्ञा दी कि अण्डे की समान बड़े २ मोती लादे। मैंने आकर इससे मोती मांगे। इसने मेरी कुछ सुनवाई नहीं की, तब मैंने इस कार्य के लिये कमर बांध ली है। अगस्त्य मुनि ऐसे पुरुषार्थी थे जिन्होंने समुद्र को तीन चुल्लू करके पान कर लिया था। उनको इस दृढ़ प्रतिज्ञ प्रेमी पर पर दया आगई और उन्होंने समुद्र को दिव्य रूप में याद किया। वो डरता कांपता सामने आया, उसे मुनि अगस्त ने आज्ञा दी कि इस प्रेमी साधु के लिये अंडे की समान मोती देदो। समुद्र ने ऐसा ही किया एक लहर के साथ अनेक मोती सामने आपड़े। प्रेमी साधु ने एक पोट उन की भरली और गठरी सिर पर रख कर इष्ट देव के पास पहुंच गया। जौहरी का पुत्र उसका इष्ट देव दुकान पर बैठा था उसके समक्ष मोतियों की गठरी रख कर साधु बोला महाराज! आप की आज्ञा के अनुसार मोती हाजिर हैं जौहरी पुत्र ने जब ढेर मोतियों का देखा आंखें चका चौंध में आगई, उसने अपने पिता को दिखाये तो वो भी आश्चर्य में डूब गया। उसने ऐसे मोती कभी देखे तक न थे और लाखों क्या किरोड़ों का माल हाथ आ गया। जौहरी को निश्चय हो गया कि यह साधु कोई देव है मनुष्य नहीं है, उसने प्रेम से भोजन कराया और साधु भोजन के बाद यथा पूर्व हाथ जोड़ कर अपने इष्ट देव को निहारने लगा। अब तो जौहरी के मित्रों ने साधु को अपूर्व व्यक्ति जान कर सम्मति दी कि यह कोई विचित्र शक्ति वाला देव है मनुष्य नहीं है। यह पुत्र पर आसक्त है उसे उड़ा ले जायगा, तुम रोते ही रह जाओगे। अब तो यदि तुम अपने पुत्र का जीवन चाहते हो तो इस व्यक्ति को किसी उपाय से मरवा डालो अन्यथा तुम्हारी अपकीर्ति दिनों दिन बढ़ेगी और पुत्र का तुम्हारे पास रहना कठिन है यह चाहेगा वहीं ले जायगा।

जौहरी को पुत्र के मोह और अपकीर्ति के भय ने उस को साधु को हत्या करने पर उद्यत कर दिया। रुपये की कमी तो पहले ही न थी, और अब तो अटूट धन उसके हाथ आगया था जिससे मदांध हो गया था। उसने बहुत सा द्रव्य कसाइयों को देकर इस निरपराधी साधु को मरवा डाला। और कसाइयों ने उसके मांस को बकरों के मांस में मिला कर बेच दिया, उनमें से एक कसाई के घर से राजा के रसोड़े में भी मांस जाया करता था। दैव योग से उस प्रेमी का दिल मांस में मिल कर राजा के रसोई घर में पहुंच गया। सब से बढ़िया कलेजे और दिल का भाग कसाई ने राजा के लिये

भेज दिया।

परन्तु रसोईये ने जब उस मांस को देगची में रख चूल्हे पर चढाया तो प्रेमी का दिल आंच लगते ही उछल कर छत से जा लगा। फिर रसोईये ने उसे देग में रख कर एक भारी पत्थर से उसे ढाँक कर चूल्हे पर चढाया तो आंच लगते ही वो दिल बड़े वेग से उछल कर फिर छत से जा लगा। कई बार ऐसा होने पर रसोइये ने राजा को सूचना दी। इस तमाशे के देखने को स्वयं राजा साहिब रसोई घर में पहुंच गये। उनके सामने भी ऐसा ही चमत्कार हुआ। तो राजा ने मन्त्रिधर्म से संमति लेकर कारण पूछा। एक वृद्ध ज्ञानी ने कहा कि यह टुकड़ा किसी बड़े योगी का दिल मालूम होता है। इसे बाजार में एक रस्से पर लटका दिया जाय। ऐसा ही किया गया और मांस को पृथ्वी में गड़वा के केवल उस दिल के टुकड़े को एक रस्सी में बाजार में लटकवा दिया।

परन्तु उस रस्से के नीचे होकर जब जौहरी पुत्र निकलता तो दिल उछल कर कुछ दूर रस्से में ही उसके साथ २ चला जाता था। यह एक नया तमाशा नगर निवासियों की दृष्टि में आया।

अब यह समय आ पहुंचा कि उस साधु के गुरु ने ध्यान में निश्चय किया कि उसका शिष्य मार डाला गया है। गुरु जी जो बड़े भारी योगी और महात्मा थे उस नगर में आये और रस्से में लटके हुए दिल को उन्होंने योग बल से पहचान लिया कि यह दिल उनके उसी शिष्य का है। वह सीधे राजा के पास चले गये और राजा को उन्होंने धमका कर कहा कि तेरे राज्य में बड़ा अनर्थ हुआ है। राजा ने हाथ जोड़ कर विनय की कि बताया जाय क्या अनर्थ हुआ है। महात्मा ने कहा उस दिल को रस्से में से खुला कर मंगाओ, तदनुसार दिल आ गया। उसे देख कर महात्मा ने कहा। नगर के सब कसाइयों को बुलाकर पूरी ताड़ना दे कर निश्चय कराओ कि यह किस का दिल है और जिस मनुष्य का दिल है वो क्यों कर मारा गया है। राजा ने जब कसाइयों को गाढी ताड़ना दी तो भेद खुल गया कि एक साधु को जौहरी ने मरवाया था उसका यह दिल है। महात्माने आज्ञा दी कि उसकी हड्डियां जहां जहां हों खोज र कसाइयों से मंगवाई जावें, कसाइयों ने सब इकट्ठी कर के लादी। महात्मा ने हड्डियों में उस दिल को रख कर चादर से ढक दिया और थोड़े ही समय में कुछ पढकर अपने कमंडल के जल का उस पर छींटा दिया। तुरन्त ही वही साधु उनका शिष्य जीवित होकर महात्मा के चरणों पर गिर गया। महात्मा ने उठाकर छाती से लगा लिया, महात्मा ने पूछा कहो बच्चा परमात्मा मिला या नहीं, शिष्य ने कहा महाराज! आपकी कृपा से मिल गया परन्तु कष्ट बहुत पाया। महात्मा ने उसी क्षण उसे असली परमात्मा के दर्शन करा दिये। ध्यान दीजिये इस दरजे का प्रेम हो तब ही परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है। कबीर जी ने सच कहा है "जब लग मरने से डरै तब लग प्रेमी नाहि।" इश्क मजाजी से इश्क हकीकी इस प्रकार उत्पन्न हो जाता है।

मनो नास के साधन

गतांक से आगे

'प्रशन योग'

'द्वौभागौ पूरयेदन्नैर्जलेनैकं प्रपूरयेत्।
मारुतस्य प्रचारार्थं चतुर्थमवशेषयेत्॥'

योगाभ्यास करने वाला योगी अपने उदर के दो भागों को अन्न से पूरण करै और एक भाग को जल से पूर्ण करै चौथे भाग को प्राण वायु के संचारार्थ खाली रक्खें।

इस प्रकार प्राणायाम आसन योग, तथा अशन योग, के अभ्यास से प्राण के गति का निरोध होता है। प्राण के निरोध हुए सर्व चित्त की वृत्तियाँ निरुद्ध हो जाती है। क्योंकि चित्त वृत्तियों का उदय होना प्राणगति के आधीन है। और बाह्य इन्द्रियों की गति चित्त के आधीन है। अभिप्राय यह है- पुर्वोक्त आसन प्राणायामआदिक साधनों से प्राण गति का निरोध होता है और प्राणगति के निरोध होने से चित्त का निरोध होता है चित्त के विरुद्ध होने से सर्व इन्द्रियों का निरोध हो जाता है। इन्द्रियों के निरोध होने पर स्वभाविक अनात्माकार जो मन की वृत्तियें थी वह भी निवृत्त हो जाती है। अनात्माकार वृत्तियों के निरोध होने पर एक आत्माकार वृत्ति अवशेष रह जाती है। इन चित्त वृत्तियों के निरोध होने को ही मनोनाश कहते हैं।

ऐसे मनोनाश के प्राप्त हुए इस विद्वान पुरुष को आत्माकार मन से आनन्द एक रस अपरिच्छिन्न प्रत्यक् आत्मा का अनुभव होता है। मन की वृत्तियों के निषेध करने के परोक्ष प्राणायाम, आशन तथा अशनयोग रूप साधन बतलाये हैं तैसे वैराग्य और अभ्यास भी मुख्य साधन बतलाया है।

सूत्र-'अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः'।

जिस वस्तु में मनुष्य की दोष दृष्टि होती है उस वस्तु में फिर मन की प्रवृत्ति नहीं होती।

विषयों में मन का प्रवृत्त न होना ही वृत्तियों का निग्रह है। जितना वैराग्य प्रबल होगा उतना ही विषय भोगों में दोष दृष्टि अधिक होगी और जितना वैराग्य कम होगा उतना ही विषयों में राग होगा। पर अपर, भेद से वैराग्य दो प्रकार का होता है।

'वैराग्यं परमेतस्य मोक्षस्य परमोऽवधिः।'

इस मोक्ष रूप संन्यास का पर वैराग्य ही परम अवधि है अर्थात् पर वैराग्य के हुए ही परम गति रूप मोक्ष की प्राप्ति होती है।

दूसरा अपर वैराग्य ४ प्रकार का होता है। यतमान १ व्यतिरेक २ एकेंद्रिय ३ वशीकार ४

यतमान वैराग्य। १

संसार में यह वस्तु सार है और यह वस्तु असार है ऐसे सारासार के विचार रूप वैराग्य को यतमान कहते हैं।

'व्यतिरेकी वैराग्य' २

मन के अन्तर जो रागद्वेष काम क्रोधादिक दोष हैं उन दोषों में से इतने दोष तो मेरे निवृत्त हो गये हैं और इतने दोष अभी मेरे अन्तर बाकी रहे हैं। इस प्रकार के विचार से बाकी रहे दोषों की निवृत्ति का उपाय करना व्यतिरेक वैराग्य कहा जाता है।

'एकेंद्रिय वैराग्य' ३

मन में विषयों की इच्छा के विद्यमान होते हुए भी बलात्कार से विषय भोगों से इन्द्रियों के

निरोध का प्रयत्न करना एकेंद्रिय वैराग्य कहा जाता है।

'वशीकार वैराग्य' ४

इस लोक के तथा परलोक के विषय भोगों को नाशवान् जान कर उन विषयों को त्यागने की तीव्र इच्छा वशीकार वैराग्य कहा जाता है।

यह वशीकार वैराग्य ही पतंजलि भगवान् योग सूत्र में कहा है।

'दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्'।

दृष्ट और आनुश्रविक विषयों में जो वितृष्णा है उसको वशीकार वैराग्य कहते हैं। विषय दो प्रकार के होते हैं। दृष्ट, और आनुश्रविक, दृष्ट वह विषय हैं जो इसी लोक में सब मनुष्यों के लिये हैं जैसे रूप, रसादि पाँचों इन्द्रियों के विषय स्त्री, अन्न वस्त्र धन ऐश्वर्य आदि जिनको नित्य प्रति देखते हैं। आनुश्रविक वे हैं जिनको शास्त्र से जानते हैं। आनुश्रविक विषय भी दो प्रकार के हैं। शरीरान्तर वेद्य और अवस्थान्तरवेद्य। शरीरान्तर-स्वर्ग विदेह, प्रकृति लयत्व, हैं। योगाभ्यासी पुरुष आत्म साक्षात्कार होने से पहले देहपात् होने से योग भ्रष्ट कहे जाते हैं। यह योग भ्रष्ट पुरुष दो प्रकार के होते हैं। १ विदेह २ प्रकृतिलय।

विदेह वे योगी हैं जो वितर्क समाधि द्वारा स्थूल तत्वों के सारे विशेषों को साक्षात्कार कर चुके हैं इसीलिये वे देह को जान कर देह में आत्म अभिमान नहीं करते इसी कारण विदेह कहे जाते हैं।

प्रकृतिलय वे हैं जो विचार समाधि द्वारा आठ प्रकृतियों को साक्षात्कर चुके हैं।

पंचतन्मात्रा, अहंकार, महत्तत्व, और प्रकृति ये आठ प्रकृतियें हैं। इन ही प्रकृतियों में इनका चित्त लीन रहा है इसलिये प्रकृतिलय कहलाते हैं।

इन दोनों प्रकार के योगियों ने अभी आत्म साक्षात्कार नहीं किया है।

अवस्थान्तर वेद्य, दिव्य गन्ध रसादि, अथवा अष्ट सिद्धियाँ रूप विषय होते हैं।

जैसे नासिका के अग्र भाग में चित्त का संयम करने से दिव्य गन्ध का साक्षात्कार होता है इसी प्रकार जिह्वा के अग्रभाग में चित्त का संयम करने से दिव्य रसों का साक्षात्कार होता है, तालु में दिव्य रूप का, जिह्वा के मध्य में दिव्य स्पर्श का और जिह्वा के मूल में चित्त का संयम करने से दिव्य शब्द का साक्षात्कार होता है। अपने संस्कारों के अन्दर चित्त का संयम करने से पूर्व जन्मों के संस्कारों का साक्षात्कार होकर पूर्व जन्म का ज्ञान होता है वह योगी जान लेता है कि उस देश में उस काल में उन कारणों से ऐसे संस्कार हो गये हैं। इसी प्रकार दूसरे के चित्त में संयम करने से दूसरों के मन की बातों का योगी को ज्ञान हो जाता है।

मैत्री करुणा आदिकों में संयम करने से मैत्री आदि बलों का साक्षात्कार होता है। मैत्री आदिक बलों के साक्षात्कार होने पर चाहे जिसको सुखी बना सका है और चाहे जिसके दुःखों को दूर कर सका है। जब योगी हस्ति, आदि के बलों में संयम करता है तब हाथी के बल का साक्षात् होता है और हाथी के बल के समान बलवान हो जाता है। इसी प्रकार सिंह के बल में संयम करने से सिंह के बल युक्त हो जाता है।

सूर्य के प्रकाश में संयम करने से योगी को सारे मंडलों का (भुवनोंका) ज्ञान होता है। चन्द्रमा में संयम करने से तारों का यथावत ज्ञान होता है। ध्रुव तारे में संयम करने से ध्रुव की गति का ज्ञान हो जाता है।

नाभि चक्र में संयम करने से कायव्यूह, शरीर के अन्तर का ज्ञान होता है। कण्ठ में संयम करने से भूख प्यास को जय कर लेता है।

मूर्द्धा स्थान में ब्रह्मरन्ध्र ज्योतिष्मतिनाड़ी में संयम करने से सिद्धों के दर्शन होते हैं। और आकाशादि पाँच भूतों में संयम करने वाला योगी पांचों भूतों को जय कर लेता है।

भूतजय के पश्चात अणिमादिक अष्ट सिद्धियों का प्रादुर्भाव होता है अणिमा, सूक्ष्म हो जाना। लघिमा, हलका हो जाना, महिमा, बड़ा हो जाना। प्राप्ति; चाहे जहां पहुंच जाना। प्राकाम्यम, जो चाहे सोई हो जाना। वशित्व, सबको अपने वश में करलेना ईशितृत्व, सब को अपनी आज्ञा में चलाने वाला 'यत्रकामावसायित्व' सत्य संकल्प होना। यह अष्ट सिद्धियां हैं और भी अनेक प्रकार की सिद्धियां हो जाती हैं।

ये सब अवस्थान्तर वेद्य विषय हैं पुरुष के परमात्मा के प्राप्ति में सब विघ्न रूप हैं। ऐसा जान कर इन सब विषयों में तृष्णा रहित होना वशीकार संज्ञा वैराग्य कहा जाता है। यह चार प्रकार के भेद वाला अपर वैराग्य कहा अब पर वैराग्य कहते हैं।

'तत् परं पुरुष ख्यातेर्गुण वैतृष्ण्यम्।'

परमात्मा पुरुष के साक्षात्कार से सत्वादि गुणों में तृष्णारहित होना पर वैराग्य कहा है। जहां तक सत, रज, तम इन गुणों का अधिकार है उन सब में वैराग्य हो जाना केवल आत्माकार ही चित्त का प्रवाह रहना इसी को पर वैराग्य शुकदेव, वामदेव, दत्तात्रेय आदिकों में हुआ है।

अभ्यास।

'तत्रस्थितौ यत्नोऽभ्यास।'

वृत्ति रहित चित्त की आत्मा में स्थिति के संपादन करने के लिये श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि, प्रज्ञा और यम नियम आदि अन्तरंग तथा बहिरंग साधनों का निरंतर अनुष्ठान करना अभ्यास है। यह अभ्यास कैसा होना चाहिये।

'सतुदीर्घ काल नैरन्तर्यसत्कारा सेवितो दृढ भूमिः।'

यह अभ्यास दीर्घ काल पर्यन्त निरन्तर सत्कार पूर्वक सेवन किया हुआ दृढ अवस्था वाला होता है।

'दीर्घकाल' बहुत वर्षों तक अभ्यास में लगे रहना किन्तु शीघ्र ही फलन मिलने से छोड़ न बैठना। और 'नैरन्तर्य' बीच २ में छोड़ न दिया जाय किन्तु निरन्तर करें जाय 'सत्कार सेवित' तप, ब्रह्मचर्य और श्रद्धा आदि गुणों के सहित उत्साह और हर्ष पूर्वक सेवन किया हुआ अभ्यास दृढ़ भूमि अर्थात् दृढ़ अवस्था वाला होता है। इस प्रकार के अभ्यास के करने पश्चात् ही ऊपर कहा गया जो वैराग्य है वह उत्पन्न होता है।

अभ्यास करने वाले योगी को अन्तरंग तथा बहि रंग साधन सहित होना बतलाया है। अन्त रंग साधनों में श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि और प्रज्ञा यह पांच साधन बतलाये हैं। 'श्रद्धा, शास्त्र और आचार्य के उपदेश को सुन कर और अनुमान से उसका निश्चय करके योग के विषय में श्रद्धा उत्पन्न होती है। और ऐसा विश्वास हो जाता है कि आत्मा परमात्मा है और उनकी प्राप्ति योग साधन ही से होती है। इसलिये उनकी योग में रुचि होती है यही श्रद्धा है यह श्रद्धा योगी का कल्याण करने वाली है और माता के समान कुमार्ग से बचाती है। श्रद्धा से 'वीर्य, उत्साह बढ़ता है जिस किसी कठिन से कठिन काम को करना हो उसमें यदि उत्साह होगा तो बहुत शीघ्र और बहुत आसानी से सिद्धि हो जायगा। उत्साह से

'ध्यान' स्थिर होता है जिसे स्मृति कहते हैं। ध्यान से 'समाधि' होती है बहुत काल तक चित्त वृत्तियों के एकाकार प्रवाह रूप ध्यान से चित्त वृत्तियों की स्थिरता रूप समाधि का लाभ होता है जितना २ समाधि में चित्त ठहरता है उतना २ ही चित्त शुद्ध सत्व के प्रकाश वाला होता है। ऐसा योगी समाधि काल में इस विश्व की रचना को तथा इस की विचित्रता को अद्भुत रूप में देखता है और दिव्य ज्ञान होता है। उस दिव्य ज्ञान से सृष्टि के विशेष २ गुणों को विशेष रूप से यथावत जानता है तथा आत्मा परमात्मा के विवेक में जागृत होता है इस प्रकार समाधि के अभ्यास से आत्मा के विवेक में जागृत होने के पश्चात् पूर्वोक्त विषयों में तृष्णा रहित पर वैराग्य उत्पन्न होता है ऐसे तीव्र वेग वाले वैराग्यवान् योगी को 'समाधि और उसके फल का शीघ्र लाभ होता है।

अन्तरंग साधनों में मुख्य साधन श्रद्धा है उपरोक्त वीर्य, स्मृति, समाधि आदि साधनों का भी यह श्रद्धा के विद्यमान हुए ही दूसरे साधन हो सकते हैं अन्यथा नहीं।

श्रद्धा आदि उपाय भी किसी योगी के 'मृदु' किसी के 'मध्य' और किसी के तीव्र होते हैं।

इसी प्रकार वैराग्य भी 'मृदुमध्य' और तीव्र होता है। जिस योगी के तीव्र उपाय और तीव्र वैराग्य हैं उसके लिये समाधि अति निकट है।

जिसके तीव्र, उपाय और 'मृदु-तीव्र वैराग्य है उसके लिये समाधि निकट है और जिस योगी के तीव्र उपाय और 'मध्य' तीव्र वैराग्य है उसके लिये समाधि 'निकटतर है। और जिसके तीव्र उपाय और तीव्र वैराग्य है उसके लिये समाधि निकटतम है भावार्थ यह है कि श्रद्धा, उत्साहादि उपाय जितने २ अधिक होंगे और वैराग्य भी जितना अधिक होगा उतना ही समाधि भी योगी के अधिक २ समीप होगी।

श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि आदिक अन्तरंग साधन योगी को तभी उपयोगी हो सकते हैं जब यम, नियम आदिक बहिरंग साधन होंगे यदि बहिरंग साधनों का अभाव होगा तो अन्तरंग साधनों का अधिकार ही नहीं है इसलिये योगाभ्यास करने वाले योगी को बहिरंग साधनों को अति प्रयत्न से संपादन करना आवश्यक है।

'यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि, यह आठ योग के अंग हैं। इनमें यम नियम आसन और प्राणायाम ये बहिरंग साधनों में हैं और प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि, यह चारि अन्तरंग साधनों में माने जाते हैं अन्तरंग साधन समीप होते जाते हैं और बहिरंग दूर दूर रह जाते हैं। बहिरंग साधनों का सद्भाव होते हुए ही अन्तरंक साधनों का उदय होता है पूर्व कहे हुए श्रद्धा आदिक साधनों का भी इन ही साधनों में आतर भाव है। अन्तरंग साधनों से पूर्व काल में ही योग-साधन करने वाले योगी को प्रयत्न पूर्वक किसी योगाभ्यासी आचार्य गुरु से तथा शास्त्र की सहायता से 'यम' नियमादिक बहिरंग साधनों का सम्पादन करना मुख्य कर्तव्य है। यह पहला सोपान (पैड़ी) है। राम.

अवधूतो पाख्यान ।

(ले० प्रभुदत्त ब्रह्मचारी)

९–अवधूत बोले हे राजन् ! (मैंने अजगर से जो सीखा है सो सुनो) दुःख के समान सुख भी स्वर्ग व नरक में दैववश स्वयं मिल जाता है, अतः बुद्धिमान् उसकी इच्छा न करे। सरस हो वा नीरस, अधिक वा थोड़ा जैसा टुकड़ा बिना मांगे मिल जाय उसी को अजगर के समान सन्तोष पूर्वक खाले। यदि भोजन न मिले तो उसके लिये प्रयत्न न कर के अजगर के समान चिरकाल तक निराहार ही रहे। उत्साह और बल से युक्त हो कर भी निश्चेष्ट पड़ा रहे बिना निद्रा के भी सोया हुवा सा रहे, इन्द्रियों से युक्त भी कोई व्यापार न करे।

१०–(अब समुद्र से मैंने जो सीखा है सो सुनो) मुनि को समुद्र के समान प्रसन्न, गम्भीर अगम्य, अज्ञेय, अनन्तपार वाला, क्षोभ रहित रहना चाहिये; वर्षा के कारण बड़ी हुई नदियों से जैसे समुद्र बढ़ता नहीं तथा ग्रीष्म काल में सूर्य के कारण बढ़ी हुई नदियों से जैसे समुद्र बढ़ता नहीं तथा ग्रीष्म काल में सूर्य के आतताप से सूखता नहीं उसी प्रकार नारायण के परायण जीवों पदार्थों के मिलने से न तो प्रसन्न होना चाहिये और न उनकी अप्राप्ति में उदास होना चाहिये।

११–(पतङ्ग की मुझ को यह शिक्षा है कि) जैसे पतङ्ग रूप पर मोहित हो कर अग्नि में जल मरता है उसी प्रकार अजितेन्द्रिय लोग देव माया रूपिणी स्त्री को देख कर उस के हाव भाव व कटाक्षों को देख कर ठगे जाते हैं और इस प्रकार अन्धकूप में आदि माया रहित पदार्थों में जो मूर्ख भोग बुद्धि से लुभाये हुये हैं, वे सारासार को देखने वाली दृष्टि को खोकर पतंगवत् अपने शरीर को नष्ट कर देते हैं। अर्थात् अपने ध्येय से विचलित हो सब साधनों की खान, मोक्ष के द्वार रूप इस शरीर को नष्ट कर देते हैं।

१२–(मधुमक्षिकाओं ने मुझे यह पाठ दिया है, कि:–) भिक्षुक को चाहिये कि किसी एक ही गृहस्थ के घर में भोजन न करे क्योंकि जिस प्रकार एक ही कमल फूल में आसक्त हुवा भ्रमर रात्रि में उसी में बन्द जाता है तथा घुट कर नष्ट हो जाता है उसी प्रकार एक ही गृहस्थ का अन्न खाने से सांसर्गिक दोष जन्य आसक्ति से यति नष्ट हो जाता है अतः शरीर के निर्वाह के लिये माधुकरी भिक्षा-थोड़ा थोड़ा अन्न कई घरों से ले। और जैसे भ्रमर भिन्न २ पुष्पों से उनका सार २ ले लेता है उसी प्रकार बुद्धिमान् पुरुष को भी छोटे बड़े सब शास्त्रों का सार ग्रहण करना चाहिये। अतिरिक्त इसके यति को चाहिये कि अन्न का संचय न करे। हाथ और उदर को ही पात्र बनावे, जितना पेट में ठीक २ समा सके उतना हाथ ही में लेकर भक्षण करे, अन्यथा संचय करने से जैसे मक्षिका शहद के साथ नष्ट होती है उसी प्रकार यति भी सायंकाल वा कल के लिये संचय किये हुये पदार्थ के साथ भ्रष्ट हो जाता है।

१३–(हाथी ने मुझे यह शिक्षा देकर मेरा उपकार किया है कि:–) भिक्षु को चाहिये कि स्त्री चाहे काठ की ही बनी हुई क्यों न हो उसे पैर से भी कभी स्पर्श न करे, यदि करेगा तो जैसे कागज की भी बनी हुई हथिनी के स्पर्श से मदमत्त बलवान् हाथी बांधा और मारा जाता है उसी प्रकार यति भी नष्ट हो जाता है। बुद्धिमान् पुरुष को चाहिये कि अपनी मृत्यु रूप-स्त्री के पास कभी न जाय, क्योंकि जैसे हथिनी के पीछे हुये हाथी को अन्य

हाथी मारते हैं वैसे ही सबल पुरुष स्त्री लंपट को मारते हैं।

१४-(मैंने शहद ले जाने वाले से यह जाना कि:-) लोभी पुरुष जिस पदार्थ का बड़े दुःख से संचय करते हैं वे न तो उसको स्वयं भोगते हैं और न दूसरों को देते हैं। जैसे मधुहारी (शहद ले जाने वाला) मक्खियों के शहद को ले जाता है उसी तरह उनके धन को भी कोई और ही भोगता है। जैसे मधुहारी उनके सामने ही उन का शहद खाता है। उसी प्रकार अनेक कामनाओं से अति-कष्ट पूर्वक संग्रहीत गृहस्थियों के पदार्थों को भिक्षु उनके सामने ही भोगता है, उसे स्वयं संग्रह करने की आवश्यकता नहीं।

१५ (मैंने हरिण से यह ज्ञान प्राप्त किया है कि) वनवासी यति ग्राम्य गीत कभी न सुने क्योंकि जैसे व्याध के गीत से मृग मोहित होकर बन्धन में पड़ता है उसी तरह यति की भी गति होती है। ग्राम्य युवतियों के गाने बजाने नाचने के देखने सुनने से हरिणों पुत्र ऋष्यशृंग उनके वशीभूत हो कर उनके हाथ की कठपुतली हो गये थे।

१६ (मछली की मुझ को यह सीख है कि:-) दुर्बुद्धि मत्स्य जैसे कांटे में लगे हुये मांस के लोभ से अपने प्राण खो देता है उसी प्रकार रस लोलुप अति प्रमाथिनी जिह्वा के वशीभूत होकर मृत्यु को प्राप्त होता है। विवेकी पुरुष अनाहार के द्वारा जिह्वा के सिवाय सब इन्द्रियों को जीत लेते हैं परन्तु जिह्वा अन्न के त्याग से और भी प्रबल हो जाती है। अतः जब तक रसना को न जीता जाय तब तक अन्य इन्द्रियों को जीतने पर भी जितेन्द्रिय नहीं कहा जा सकता क्योंकि रसना के जीतने पर ही सब विषय जीते जा सकते हैं।

१७ (हे राजकुमार! पूर्वकाल में विदेह नगर जनकपुर) में एक पिङ्गला नाम की वेश्या थी। उससे मैंने जो शिक्षा प्राप्त की है सो सुनो। वह स्वतंत्रा पिंगला एक दिन किसी अपने प्रेमी को घर में लाने की इच्छा से सुन्दर वस्त्र अलंकारों से बन ठन कर देर तक घर के द्वार पर खड़ी रही। हे नरश्रेष्ठ! उस मार्ग से जो कोई भी आता उसी को वह धन लोलुपा वेश्या यह समझती कि कोई धनवान् मेरे लिये ही आ रहा है। किन्तु जब वह आने वाला पुरुष निकल जाता तो वह फिर सोचती कि कोई बड़ा धनी मेरे पास और आ रहा होगा इसी प्रकार की आशा में उसको नींद भी नहीं आई और वह कभी घर में जाती कभी फिर वेग से द्वार पर देखने को धावती, इस प्रकार उसकी आधी रात हो गई। "आशा हि परमं दुःखम्" धन की आशा से प्रतीक्षा करते २ उसका मुख सूख गया, चित्त दीन हो गया। उस समय उसकी चिन्ता के कारण उसको परम सुख कारक वैराग्य उत्पन्न हुआ, वैराग्य के उत्पन्न होने से जो कुछ उसने उस समय कहा उसे सुनो। पुरुष के कठिन आशा पाश के छेदन के लिये वैराग्य खड्ग के समान है। शरीर से वैराग्य हुये बिना कोई भी देह बन्ध को छोड़ना नहीं चाहता। जैसे विवेक के बिना ममता का त्याग किसी से भी नहीं हो सकता ऐसे ही) पिङ्गला बोली:-

अहो मे मोह विततिं पश्यताऽविजितात्मनः।
या कान्तादसतः कामं कामये येन बालिशा॥

अहो! मुझ मूर्खा और अजितेन्द्रिया के मोह का विस्तार तो देखो जो असबुद्धि प्रेमियों से कामना को चाहती हूं। मैं बड़ी बेसमझ हूं जो अपने समीप रमण करने वाले, नित्य रति और धन को देने वाले परमात्मा को छोड़ कर कामनापूर्ति में असमर्थ, दुःख, भय, शोक और मोह को देने वाले तुच्छ

पुरुषों को भजती हूं। अहो! मैंने अत्यन्त निन्दनीय वेश्यावृत्ति से अपने आत्मा को संतप्त किया! हाय! धन के लोलुप, शोचनीय, और धनार्थ बिके हुये शरीर से मैंने क्षुद्र लंपट पुरुषों से रति और धन की इच्छा की। जो अस्थिमय, त्वचा, रोम नखों से युक्त मांसान, मल मूत्र का भांडा, नौ द्वार वाला है उसको मेरे समान कौन स्त्री कान्त समझ कर सेवन करेगी। इस विदेह नगरी में मैं ही ऐसी मूर्खा हूं जो आत्मप्रद अच्युत परमात्मा को छोड़ कर पुरुषों से अपनी कामना पूर्ण कराना चाहती हूं। जो सब शरीरियों के सुहृद, प्यारे, स्वामी और आत्मा हैं अब मैं लक्ष्मी के समान उन्हीं से रमण करूंगी. आज निश्चय ही भगवान् विष्णु मेरे किसी शुभ कर्म से प्रसन्न हैं जो मुझ दुराशा दग्ध चित्ता को परम सुख का हेतु वैराग्य उत्पन्न हुआ है। यदि मेरा भाग्य मन्द होता तो ये दुःख वैराग्य के कारण नहीं होते, जिस वैराग्य से पुरुष विघ्न बाधाओं को काट कर शान्ति प्राप्त करते हैं। अतः अब मैं उस परमात्मा के उपकार को शिरोधार्य कर विषय संग जन्म दुराशा को छोड़ कर उसी जगदीश्वर की शरण में प्राप्त होती हूं। सन्तोष पूर्वक वैराग्य में श्रद्धा रख कर, यथा लाभ से सन्तुष्ट, अपने आत्मा में रमण करती हुई विहार करूंगी। संसार कूप में पड़े हुये, विषयों से चुराई हुई है दृष्टि जिसकी ऐसे काल रूप सर्प से ग्रसित आत्मा (जीव) की परमात्मा के बिना कौन रक्षा कर सकता है। सम्पूर्ण विषयों से उपराम होने पर आत्मा ही आत्मा का रक्षक होता है, अतः प्रमाद से रहित होकर इस विश्व को निरन्तर काल रूपी सर्प से ग्रसित देखे।

अवधूत बोले—हे राजन्! पिंगला वेश्या इस प्रकार निश्चित बुद्धि से कान्ता अलाभजन्य दुराशा को छोड़ कर शान्त चित्त से अपनी शैय्या पर सो गई।

आशाहि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्।
यथा संछिद्य कान्ताशां सुखं सुष्वाप पिंगला॥

आशा ही परम दुःख है और निराशा ही परम सुख है। जैसे कान्त की आशा छोड़ कर पिंगला सुख से सो गई, ऐसे ही पुरुष सांसारिक आशा को छोड़ कर परम सुख को पाया करे।

अपूर्ण

योग-साधन

(ले० श्रीस्वामीशिवानन्द जी स्वर्गाश्रम)

१७७. संसार के जीवों के समस्त पाँच विराट पुरुष भगवान के पांव हैं। इसके जानने के लिए पुरुष सूक्त और गीता के १३ वें अध्याय को पढ़ना चाहिए। "सर्वतः पाणि पाद।" यदि तुम इन वचनों को हृदय में धारण कर लोगे तो परमात्मा के अनुभव करने में तुमको बहुत सहायता मिलेगी। ऐसा करने से तुम्हारी घृणा मिट जावेगी और तुम्हारे हृदय में विश्व प्रेम उत्पन्न हो जावेगा। बड़ाई और छुटाई के विचार नष्ट हो जावेंगे। तुमको सर्वत्र भगवान कृष्ण के दर्शन होंगे। तुमको सम्यक दर्शन, सम्यक ज्ञान और परा भक्ति की प्राप्ति होगी। सब का मान करो। सब को प्रणाम करो।

१७८. मैं फिर आपसे निवेदन करना चाहता हूं कि काम ही राम है। फल की इच्छा को छोड़ कर निष्काम भाव से शुद्ध हृदय से काम किया जावे तो उससे आत्मा की

बहुत उन्नति होती है। काम अहंकार रहित, अपने को निमित्त मात्र समझ कर परमात्मा के हाथ का औजार बनकर, भक्ति भाव से अपने को प्रकृति की क्रियाओं का साक्षी समझ कर करना चाहिए। यह ज्ञान प्राप्ति का मार्ग है। सब ही कर्म्म उत्तम हैं। कर्म्म योग की दृष्टि से, उच्च भावों से और भगवान् की दृष्टि से संसार में कोई भी कर्म्म बुरा नहीं है।

१७६. भंगी का काम भी यदि उपरोक्त भावना से किया जावेगा तो परमात्मा की प्राप्ति में पूर्ण योग साधन के तुल्य होगा।

१८०. यह स्वार्थ ही है जिसने बहुत बुरी तरह तुम्हारे हृदय को जकड़ रक्खा है। मनुष्य में स्वार्थ बुद्धि का होना बड़ा लांछन है। स्वार्थ से ज्ञान पर परदा पड़ जाता है। स्वार्थ तुच्छ बुद्धि में होता है। अध्यात्मिक उन्नति निष्काम कर्म्म से ही हो सकती है।

१८२. तुम कुछ भी अध्यात्मिक साधन करो, चाहे जप करो, चाहे आसन करो। उस समय यातो सगुण मूर्ति पर चित्त एकाग्र करो या प्राणायाम करो और इस अभ्यास को विधि पूर्वक नित्य नियम से करो। इस अभ्यास का अनन्त फल है। तुम अमर हो जाओगे। तुम्हारी समस्त इच्छाएं विलीन हो जावेंगी। तुमको नित्य तृप्ति और अनन्त तुष्टि प्राप्त होगी।

१८३. एकान्त में शान्ति के साथ अपनी आप परीक्षा करो। अपने विचारों से अपने कमरे को अड्डा बना डालो। चित्त की वृत्ति को अन्तर्मुख करो। इस "मैं का विश्लेशन करो। मि० जान मि० शर्मा, मि० पान्तलु आदि भेद भाव ही सब कष्टों, आपत्तियों और दुःखों का मूल है। इस भाव को विलीन करो, ऐसा करने पर तुम्हारी ब्रह्म में स्थिति हो जावेगी। मेरे मित्रो सन्देह मत करो। यह ज्ञान साधन का निचोड़ है।

१८४. ध्यान करो, ध्यान करो, ध्यान करो। चित्त वृत्ति निरोध करो, निरोध करो, निरोध करो। मेरे मित्रो आध घण्टे से बढ़ाकर नित्य प्रति तीन घण्टे तक अभ्यास बढ़ालो। आलस्य के कारण एक दिन भी अभ्यास न छोड़ो। आलस्य साधक योगी की उन्नति में बड़ी भारी रुकावट है। आयु अल्प है, काल दौड़ लगा रहा है और अध्यात्मिक साधन में बाधाएं बहुत हैं। इन विघ्न बाधाओं पर पुरुष थं और प्रार्थना द्वारा विजय प्राप्त करो।

यदि तुम सच्चे हो तो तुमको अन्तर से, बाहर से, अन्तरिक्ष लोक की आत्माओं से, और जीवन्मुक्तों से, जो संसार में सब जगह मिलते हैं और उन अमर ऋषि महात्माओं से जैसे वेद-व्यासजी, वशिष्ठ जी, कपिलमुनि जी और दत्तात्रय जी आदि से बहुत सहायता मिलेगी।

१८५. साधु सन्यासी, भक्त और ग़रीब लोगों की भक्ति भाव से सेवा करो। सेवा का भाव तुम्हारी हड्डियों और रग व रेशों में समा जाना चाहिए। इसका फल अनन्त है। अभ्यास करो और विश्व दृष्टि बनाओ और अनन्त आनन्द का ध्यान करो। लम्बी चौड़ी बातें और फिजूल की बकवास छोड़ दो। काम में पूर्ण उत्साह और प्रेम होना चाहिए। सेवा भाव में बहुत तीव्र और शीघ्रगामी बनो।

१८६. क्षमा, प्रेम, धैर्य्य, सन्तोष और अहंकार रहित भावना से क्रोध का शमन करो।

१८७. यदि तुम्हारे साथ किसी ने बुराई करी हो तो तुम इसको बहुत जल्द भूल जाओ। इस कहावत को याद रक्खो "नित्य प्रति दूसरों के कसूरों को भूल जाओ और क्षमा कर दो।"

१८८. लोगों के द्वारा किए गए अपमान और झिड़कियों को सहन करो। इससे आत्मिक शक्ति

बढ़ेगी। अध्यात्मिक साधक के लिए मान और बड़ाई विष तुल्य हैं। निन्दा और अपमान जिज्ञासु या मुमुक्षु के लिए भूषण और रत्नों के तुल्य हैं।

१८९. जप तीन प्रकार का है वाचक, उपांशु (ऐसा उच्चारण जिसमें केवल होठ चलते दिखाई दें) और मानसिक।

१९०. उपांशु जप का फल मन्त्र का ज़ोर से उच्चारण करने के जप से हज़ार गुणा है और मानसिक जप का फल किरोड़ गुणा है।

१९१. चित्त की सावधानी से निगरानी करो। जिस प्रकार भोजन में चित्त कितने ही पदार्थों की आवश्यकता रखता है इसी प्रकार जप में भी चित्त को अनेक विधियों की आवश्यकता है। जब यह मानसिक जप में थक जावे और तुम देखो कि इसने इधर उधर घूमना आरम्भ कर दिया है तो उच्च स्वर से जप करना आरम्भ कर दो। इससे यह भी लाभ होगा कि मंत्र को सुन भी सकोगे। इस विधी से कुछ देर के लिए चित्त बहुत एकाग्र हो जावेगा। उच्च स्वर से जप करने में तुम एक घण्टे में थक जाओगे। इस प्रकार तीनों तरीकों से अभ्यास करो। इस अभ्यास में घर की बुद्धि से काम लो।

१९२. जिस जिज्ञासु की बुद्धि स्थूल है उसके लिए आरम्भ में मानसिक जप करना कठिन है।

१९३. राम मन्त्र, का मानसिक-जप स्वांस के साथ सोऽहं अथवा अजपा जाप की भान्ति बड़ी आसानी से जपा जासकता है।

१९४. जब स्वांस भीतर लो तो मन में 'रा, कहो और जब स्वांस बाहर निकालो तो 'मा' कहो। यह अभ्यास चलते फिरते भी जारी रक्खो। कुछ आदमियों के लिए यह साधन आसान है। अपने ध्यान के कमरे में यह अभ्यास करो, इसके साथ २ धीरे२ भाव को भी बढ़ाना चाहिए। भाव से तात्पर्य सात्विक भाव, शुद्ध भाव और दैवी भाव है। यह राम मन्त्र का अजपा जाप है।

१९५. अजपा का अर्थ है बिना होठों के प्रयोग किए जप करना। इसका सम्बन्ध स्वांस की गति से है। मनुष्य २४ घण्टे में बिना ज्ञान के इक्कीस हज़ार छे सो बार जप करता है। तुम स्वांस की गति पर ध्यान रक्खोगे तो स्वांस भीतर लेते हुए तुमको सो, शब्द की ध्वनि सुनाई देगी और स्वांस बाहर छोड़ते समय 'हम' की ध्वनि सुनाई देगी। केवल साधारण तौर पर कभी २ स्वास का ध्यान रक्खो और एक घण्टा बन्द कमरे में अभ्यास करो। परन्तु यह अभ्यास 'सोऽहं, ध्यान के अतिरिक्त चाहिए। यह ध्यान करने का आसान तरीका है। तुम चलते फिरते, खाते पीते, उठते बैठते स्वांस की गति पर ध्यान रख सकते हो।

१९६. पेन्शन पाने वाले आदमियों को छोटे मन्त्र 'राम' दिन में कम से कम ५० हज़ार बार जपना चाहिए। उनको इससे बहुत लाभ होगा। इतना जप छै घण्टे में हो सकता है। इस भान्ति जप करने से उनको चित्त की शान्ति, शुद्धि, शक्ति और आनन्द की प्राप्ति होगी और अपने इष्टदेव के दर्शन प्राप्त होंगे।

१९७. जिनको गाने का प्रेम है वह राम मन्त्र या कोई और मन्त्र गाकर जप सकते हैं। जप से चित्त उन्नत होगा। एकान्त में बैठकर उसका नाम गाओ तुमको समाधि और भाव की उपलब्धि होगी।

१९८. सर वुडरोफ जज की बनाई हुई मंत्र शास्त्र की वर्ण माला नाम की पुस्तक पढ़ो फिर तुमको मन्त्र की सामर्थ्य का ज्ञान होगा।

१९९. नारद जी के उपदेश से रत्नाकर डाकू

मरा, मरा के जाप से बाल्मीकि ऋषि बन गया।

२००. महाराष्ट्र के सन्त तुकाराम जी को भगवान कृष्ण के विट्ठल २ नाम के जपने से कृष्ण महाराज के कई बार साक्षात दर्शन प्राप्त हुए।

२०१. प्रातः स्मरणीय बालभक्त ध्रुव जी को ओ३म् नमो भगवते वासुदेवाय, भगवान् कृष्ण के बारह अक्षर के मन्त्र से साक्षात् कृष्ण भगवान् के दर्शन हुए।

२०३. भक्त शिरोमणी प्रहलाद जी ने 'नारायण' 'नारायण' का जप करके हरि के साक्षात् दर्शन प्राप्त किए।

२०४. स्वामी रामदास जी ने जोकि शिवाजी के गुरु थे तकली ग्राम के निकट गोदावरी के जल में खड़े होकर 'श्रीराम, जय राम, जय जय राम" मन्त्र का १३ करोड़ बार जप किया और वह बड़े सन्त बन गए।

२०५. मेरे मित्रो कोई कारण नहीं है कि तुम अच्छे सन्त न बन सको। कलियुग में परमात्मा का साक्षात्कार शीघ्र हो सकता है। यह परमात्मा की दया है। इस युग में तुमको कठिन तप करने की आवश्यकता नहीं है। इस समय तुमको एक हज़ार वर्ष तक एक पाँव से खड़े रहने की आवश्यकता नहीं है। थियोसोफी के मतानुसार इस युग में मनुष्यों की बुद्धि में बहुत विकाश हो चुका है।

२०६. अपनी इच्छाओं को कम करो। नित्य प्रति कुछ घण्टे मौन साधन करो किसी एकान्त कमरे में नित्य दो घण्टे परमात्मा के नाम का उच्चारण या जप करो। किसी से बहस न करो। अपना दूसरों के साथ मुकाबला मत करो। नाम और कीर्ति की इच्छा को छोड़ दो। यदि तुम ६ मास इसी प्रकार अभ्यास करो तो मैं तुमको विश्वास दिलाता हूँ कि तुमको चित्त की शान्ति प्राप्त होगी। यदि तुमको कुछ आध्यात्मिक लाभ न हो या तुम्हारे चित्त की कुछ शुद्धि न हो तो तुम मेरा उपहास कर सकते हो परन्तु मेरे शब्दों पर ध्यान धरके अभ्यास अवश्य करना होगा।

पाठकों से निवेदन।

प्रिय पाठकगण! आप प्रायः सब ही आशा लगा बैठे होंगे कि भक्ति का विशेषांक शीघ्र प्राप्त होगा। इतना ही नहीं आपके चित्त में अनेक कल्पनाएं होंगी कि अङ्क क्या होगा, कैसा होगा? परन्तु जब आपको डाक द्वारा साधारण अंक प्राप्त होगा तो आपको निराशा और दुःख दोनों होंगे। यह स्वाभाविक है आशा पूरी न होने पर दुःख का होना अनिवार्य है। स्वयं हमको इस बात का बड़ा दुःख है कि हम विशेषांक नहीं निकाल सके। जो कदम हमने आगे बढ़ाया था हम उस पर स्थिर नहीं रह सके। इसका एक मात्र कारण अर्थाभाव है। वर्तमान काल में अर्थ का लोप सा हो रहा है। सार्वजनिक कामों के लिए रुपये की सहायता मिलना बड़ा कठिन है। सर्व साधारण भक्ति से लाभ उठा सकें इसलिए भक्ति का चन्दा बहुत कम रक्खा गया है परन्तु तिसपर भी पर्याप्त ग्राहक संख्या न होने से भक्ति को बड़ी क्षति उठानी पड़ती है। अब तक संरक्षकों और सहायकों की सहायता से काम चलता है। यदि भक्ति की ग्राहक संख्या तीन हज़ार हो जाती तो भक्ति अपने पांव पर चलने लगती और बहुत सुन्दर विशेषांक भी प्रकाशित किया जासकता था परन्तु भगवान् की मरज़ी कुछ और ही है, वह अभी भक्ति पर प्रसन्न नहीं हैं। भगवान् इतने से राज़ी नहीं हैं वह अधिक पुरुषार्थ चाहते

हैं। हमको अभी बहुतकाम करना होगा जब कहीं जाकर नट नागर प्रसन्न होंगे। हमारा विश्वास है कि भक्ति का बहुत प्रचार होगा क्योंकि इसकी बड़ी आवश्यकता है। बिना भक्ति के संसार बहुत दुःखी है। भक्ति से ही लोगों की सन्तप्त आत्मा को शान्ति मिलेगी। घर घर और नगर२ व शहर व क़स्बे सब में भक्ति का प्रचार होगा। भक्त के भजन और शब्द नरनारियों की ज़बान पर होंगे। पाठक गण आप धैर्य्य और सन्तोष रखकर भक्ति से प्रेम बनाए रहें। विशेषांक फिर प्रकाशित होंगे और पहले से भी बढ़कर होंगे।" सब दिन होत न एक समान"।

अप्रसन्न या असन्तुष्ट होने की बजाय आप साहस से काम लेकर भक्त की ग्राहक संख्या बढ़ाने का प्रयत्न करें और जब तक संख्या तीन हज़ार न होजावे इस प्रयत्न को जारी रक्खें परमात्मा अवश्य सहायता करेंगे और हम अपने काम में सफल मनोरथ होंगे।

कृष्णानन्द

भजन

मोरे लगि गये बान सुरंगी हो ॥ टेक ॥
धन सतगुरु उपदेश दियो है,
होइ गयो चित्त सिरंगी हो ॥ १ ॥
ध्यान पुरुष की बनी है तिरिया,
घायल पांचो संगी हो ॥ २ ॥
घायल की गति घायल जाने,
क्या जाने जाति पतंगी हो ॥ ३ ॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो,
निसि दिन प्रेम उमंगी हो ॥ ४ ॥

२

हमन है इश्क मस्ताना,
हमन को होसियारी क्या।
रहैं आज़ाद या जग से,
हमन दुनिया से यारी क्या ॥ १ ॥
जो बिछुड़े हैं पियारे से,
भटकते दर बदर फिरते।
हमारा यार है हम में,
हमन को इन्तिज़ारी क्या ॥ २ ॥
खलक सब नाम अपने को,
बहुत कर सिर पटकता है।
हमन गुरु नाम साचा है,
हमन दुनिया से यारी क्या ॥ ३ ॥
न पल बिछुड़े पिया हम से,
न हम बिछुड़ैं पियारे से।
उन्हीं से नेह लागी है,
हमन को बेक़रारी क्या ॥ ४ ॥
कबीरा इश्क का माता,
दुई को दूर कर दिल से।
जो चलना राह नाज़ुक है,
हमन सिर बोझ भारी क्या ॥ ५ ॥

३

मन मस्त हुआ तब क्यों बोले ॥ टेक ॥
हीरा पायो गाँठ गठियायो,
बारबार वा को क्यों खोलै ॥ १ ॥
हलकी थी जब चढ़ी तराजू,
पूरी भई तब क्यों तोलै ॥ २ ॥
खुरत कलारी भई मतवारी,
मदवा पी गई बिन तोले ॥ ३ ॥
हंसा पाये मानसरोवर,
ताल तलैया क्यों डोलै ॥ ४ ॥

तेरा साहिब है घट माहीं,
बाहर नैना क्यों खोलै ॥ ५ ॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो,
साहिब मिल गये तिल ओलै ॥ ६ ॥

४

मैं तो आन पड़ी चोरन के नगर,
सतसंग बिना जियतरसे ॥ १ ॥
इस सतसंग में लाभ बहुत है,
तुरत मिलावै गुरु से ॥ २ ॥
मूरख जन कोइ सार न जानै,
सतसंग में अमृत बरसे ॥ ३ ॥
सबद सा हीरा पटकि हाथ से,
मुट्ठी भरी कंकर से ॥ ४ ॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो,
सुरत करो वा घर से ॥ ५ ॥

५

जाग पियारी अब का सोवै ।
रैन गई दिन काहे को को खोवै ॥ १ ॥
जिन जागा तिन मानिक पाया ।
तैं बौरी सब सोय गंवाया ॥ २ ॥
पिय तेरे चतुर तू मूरख नारी ।
कबहुं न पिय की सेज संवारी ॥ ३ ॥
तैं बौरी बौरापन कीन्हों ।
भर जोबन पिय अपन न चीन्हो ॥ ४ ॥
जाग देख पिय सेज न तेरे ।
तोहि छांड़ि उठि गये सबेरे ॥ ५ ॥
कहै कबीर सोई धन जागै ।
सबद बान उर अन्तर लागै ॥ ६ ॥

६

बदौं क्यों ना होड़ माधो मो सौं ।
ठाकुर तैं जन जन तैं ठाकुर,
खेल पर्‌या है तो सौं ॥ १ ॥
आपन देव देहरा आपन,
आप लगावै पूजा ।
जल तैं तरंग तरंग तैं है जल,
कहन सुनन को दूजा ॥ २ ॥
आपहिं गावै आपहिं नाचै,
आप बजावै तूरा ।
कहत नामदेव तू मेरो ठाकुर,
जन ऊरा तू पूरा ॥ ३ ॥

७

भाई रे इन नैनन हरि पेखो ।
हरि की भक्ति साधु की संगति,
सोई यह दिल लेखो ॥ १ ॥
चरन सोई जो नचत प्रेम से,
कर सोई जो पूजा ।
सीस सोई जो नवै साधु के,
रसना और न दूजा ॥ २ ॥
यह संसार हाट को लेखा,
सब कोउ बनिजहिं आया ।
जिन जस लादा तिन तस पाया,
मूरख मूल गंवाया ॥ ३ ॥
आतम राम देह धरि आयो,
ता में हरि को देखो ।
कहत नामदेव बलि बलि जैहौं,
हरि भजि और न लेखो ॥ ४ ॥